संवादसेतु

मीडिया का आत्मावलोकन

अंक : 11 | पृष्ठ : 20 | जून 2012 | नयी दिल्ली

मिले मालिक और बाजार मजदूर बना पत्रकार

संवादसेतु

संपादक
आशुतोष

सह–संपादक
रवि शंकर

संपादक मंडल
अमल कुमार श्रीवास्तव
नेहा जैन
सूर्यप्रकाश

कार्यालय
प्रेरणा, सी–56/20,
सेक्टर–62, नोएडा

संपर्क:
0120-2400335
mail@samvadsetu.com
वेब : samvadsetu.com

अनुरोध

संवादसेतु की इस पहल पर आपकी टिप्पणी एवं सुझावों का स्वागत है। अपनी टिप्पणी एवं सुझाव कृपया उपरोक्त ई–मेल पर अवश्य भेजें।

'संवादसेतु' मीडिया सरोकारों से जुड़े पत्रकारों की रचनात्मक पहल है। 'संवादसेतु' अपने लेखकों तथा विषय की स्पष्टता के लिए इंटरनेट से ली गई सामग्री के रचनाकारों का भी आभार व्यक्त करता है। इसमें सभी पद अवैतनिक हैं।

अनुक्रमणिका

संपादकीय 2

आवरण कथा
मिले मालिक और बाजार, मजदूर बना पत्रकार 3

परिप्रेक्ष्य
मीडिया का 'अघोर तंत्र' है टीआरपी 6

साक्षात्कार
खबरों की जगह गॉसिप जर्नलिज्म हावी– भावदीप कंग 9

लेख
पत्रकारिता के खोते मापदंड 11

संस्मरण
'हिंदी केसरी' माधवराव सप्रे 13

न्यू मीडिया
अंतरजाल का भ्रमजाल 15

परिचर्चा
मीडिया पर अंकुश सही या गलत 16

विविधा
सरकार ने चलाया तानाशाही दाव, मीडिया पर लगाम लगाने की तैयारी 17
चौथे स्तंभ पर टिकी है देश की नजर : चौटाला 18
डा.शिवशंकर कटारे को अखिल भारतीय माखनलाल चतुर्वेदी पुरस्कार 18
पत्रकार हरीश चंद्र बर्णवाल की कहानियों का संग्रह रिलीज 19

मीडिया शब्दावली 20

जम्मू–कश्मीर के लिये गठित वार्ताकारों के दल ने राज्य में मीडिया की भूमिका पर भी गंभीर टिप्पणियां की हैं। उसने अपनी रिपोर्ट में राज्य से छपने वाले समाचार पत्रों के आर्थिक स्त्रोतों की जांच किसी सक्षम संस्था द्वारा कराये जाने की अनुशंसा की है। रिपोर्ट में कहा गया है कि एक ओर प्रकाशकों का कहना है कि जो समाचार पत्र सरकार के संकेतों पर नहीं चलते उनके विज्ञापन रोक दिये जाते हैं वहीं दूसरी ओर सरकार का आरोप है कि कुछ समाचार पत्र निराधार खबरें छापते हैं तथा सरकार के विरुद्ध निंदा अभियान चलाते हैं। रिपोर्ट में मीडिया संस्थानों द्वारा अपने प्रकाशनों की प्रसार संख्या बढ़ा–चढ़ा कर बताने की भी बात कही गयी है।

प्रेस कौंसिल ऑफ इंडिया अथवा ऐडीटर्स गिल्ड ऑफ इंडिया द्वारा उक्त आरोपों की जांच तथा ऑडिट ब्यूरो ऑफ सर्कुलेशन द्वारा प्रसार संख्या की जांच करवाने की सिफारिश भी रिपोर्ट में की गयी है। साथ ही, कुछ पत्रकारों द्वारा अपनी खबरों के लिये उद्धरणों के आविष्कार अर्थात स्वयं ही बयान गढ़ लेने की भी आलोचना की गयी है। रिपोर्ट के अनुसार राष्ट्रीय मीडिया में कुछ पत्रकारों को छोड़ कर अधिकांश प्रायः हिंसा की घटनाओं तथा आरोप–प्रत्यारोप तक ही सीमित रहते हैं। कुछ पत्रकार ऐसे भी हैं जो चुनिंदा खबरों को ही लेते हैं और इस या उस राजनीतिक खेमे के पक्ष में रिपोर्टिंग करते हैं।

वार्ताकार दल के मुखिया दिलीप पडगांवकर स्वयं एक जाने–माने पत्रकार हैं। उनके द्वारा मीडिया पर टिप्पणी का अपना अर्थ है। लेकिन उन्होंने जम्मू–कश्मीर की मीडिया पर जो आरोप लगाये हैं उनमें नया कुछ भी नहीं। उनकी नाक के नीचे दिल्ली में भी मीडिया में यही कुछ चलता है। जम्मू–कश्मीर की मीडिया में यह स्थिति एक दिन में नहीं आयी है। जिस तरह से वहां कश्मीरी पंडितों से घाटी को खाली कराया गया उसी तरह से श्रीनगर स्थित तमाम पत्रकारों को वापस जाने को मजबूर किया गया। रेडियो और टीवी के पत्रकारों और कर्मचारियों को आतंकवाद के दौर में सरकार की नीति को प्रसारित करने की कीमत अपनी जान देकर चुकानी पड़ी है। अनेक स्थानीय पत्रकार भी पत्रकारीय मूल्यों पर टिके रहने के कारण मारे गये। कई समाचार पत्रों के कार्यालय फूंक दिये गये। उनके हत्यारों में से एक को भी आज तक सजा नहीं हो सकी है।

इन परिस्थितियों में वातानुकूलित कार्यालयों में बैठ कर आपत्तियां जताना और उपदेश देना एक बात है और बिना सुरक्षा के अपने परिवार का पालन–पोषण करते हुए कश्मीर घाटी में पत्रकारिता करना दूसरी बात। पडगांवकर ने अपने कश्मीर दौरे के बीच शायद यह जानने की कोशिश नहीं की कि आतंकवाद की आंधी के बीच भी अपने फर्ज को पूरा करते हुए जो पत्रकार मारे गये उनके परिवारों की क्या हालत है। अगर ऐसा हुआ होता तो उन्होंने जिस तरह आतंकवादियों और पत्थरबाजों को रियायतें देने और खैरात बांटने की सिफारिशें की हैं, उस फेहरिस्त में इन पत्रकारों की विधवाओं और बच्चों के भी नाम होते।

राष्ट्रीय मीडिया के अधिकांश ब्यूरो आज भी श्रीनगर में हैं किन्तु उनके ब्यूरो चीफ अथवा संवाददाताओं में इने–गिने लोग ही गैर–कश्मीरी, गैर–मुस्लिम हैं। पिछले दो दशकों के इस अंधेरे के बाद अगर कुछ अखबार जिन्दा हैं तो सिर्फ इसलिये क्योंकि अलगाववादियों को भी अपनी बात लोगों तक पहुंचाने के लिये उनकी जरूरत है। इसलिये यह अखबार अलगाववादी धड़ों के मुखपत्र के रूप में प्रकाशित हो रहे हैं।

समाचार पत्रों के आर्थिक स्त्रोतों की जांच कौन, कैसे और किसलिये करेगा? अमेरिका में रह कर आईएसआई के लिये लॉबिंग करने वाले डॉ गुलाम नबी फई के साथ कश्मीर के प्रमुख समाचार पत्र कश्मीर टाइम्स के संबंध जग–जाहिर हैं। क्या उसकी जांच से कोई नया तथ्य हाथ लग जायेगा। लेकिन क्या पडगांवकर में हिम्मत है कि इसके लिये कश्मीर टाइम्स के प्रबंधन के खिलाफ कार्रवाई की सिफारिश करें। वे खुद भी तो उसी फई की दावत कुबूल कर चुके हैं। किस मुंह से वे यह सिफारिश कर सकते हैं।

आईएसआई के पैसे पर विश्वभ्रमण करने और पांचसितारा होटलों में रुक कर बढ़िया दावतें पाने वालों में दर्जनों भारतीय स्वनामधन्य पत्रकार शामिल हैं। इन पत्रकारों की संपत्ति, उनकी विदेश यात्राओं के खर्चे का हिसाब, उनके आलीशान बंगलों और गाड़ियों के काफिलों के हिसाब की भी जांच की सिफारिश इस रिपोर्ट में होती तो क्या ही अच्छा होता। जांच का बिन्दु यह भी हो सकता है कि विदेशों में तफरीह के बाद लौट कर उन्होंने समाचार पत्रों में जो लेख लिखे उनका झुकाव भारत सरकार की नीतियों के समर्थन की ओर था अथवा फई की कांफ्रेस के संस्मरण ही उन्होंने लिख डाले थे।

लेकिन यह तफरीह करने वाले तो लौटने के बाद कांफ्रेस का एजेण्डा भूल सकते हैं, तफरीह कराने वाले नहीं। इसलिये जब वार्ताकारों की रिपोर्ट में भारत के साथ जम्मू–कश्मीर के एकीकरण के प्रयास सुझाये गये तो फई ने पडगांवकर को टोकने में जरा भी समय नहीं लगाया। उसने उन्हें कश्मीर के एक स्वतंत्र इकाई होने की याद दिलाते हुए कहा कि न्यूयॉर्क घोषणा में यह स्पष्ट है कि नियंत्रण रेखा के दोनों ओर के जम्मू–कश्मीर के सभी लोगों को साथ लिये बिना कोई समझौता नहीं हो सकता। फई ने यह भी याद दिलाया कि 25 फरवरी 2005 को हुई न्यूयॉर्क घोषणा की ड्राफ्ट कमेटी के सदस्य स्वयं पडगांवकर भी थे।

इस सबके बावजूद, दिलीप पडगांवकर ने एक अच्छा मुद्दा उठाया है जिसे उठाने से मीडिया हमेशा बचती रही है। यदि उनकी सिफारिश मानते हुए इस प्रकार की कोई जांच होती है तो निस्संदेह मीडिया की जवाबदेही बढ़ेगी।

भवदीय
संपादक

मिले मालिक और बाजार मजदूर बना पत्रकार

हिमांशु शेखर

हर साल पहली मई को श्रम दिवस के तौर पर मनाया जाता है। इस मौके पर सामान्यतः मीडिया श्रमिकों के हक और हित की बात करते हुए नजर आते हैं। पर कहीं भी मीडिया में काम करने वालों की चर्चा नहीं होती है। कहीं भी इस बात की चर्चा करना मुनासिब नहीं समझा जाता है कि 1991 के बाद मीडिया पर बाजारवाद हावी होने से पत्रकारिता का जो मौजूदा स्वरूप विकसित हुआ है, इसमें पत्रकारों और गैर पत्रकारों के काम करने की परिस्थितियां किस तरह से बदल गई हैं। पिछले बीस सालों में पत्रकारिता ने कई बड़े बदलाव देखे हैं। इन दो दशकों में ही पत्रकारों ने पत्रकार से कर्मचारी तक का सफर तय किया है और पत्रकारिता को भी मीडिया मालिकों ने दूसरी नौकरियों की तरह ही बना डाला है।

बहरहाल, वह दौर ज्यादा पुराना नहीं है जब पत्रकारिता को एक अलग तरह का काम माना जाता था। इस क्षेत्र में काम करने वालों को बेहद सम्मान दिया जाता था और खबरिया संस्थान चलाने वाले भी इन्हें कर्मचारी नहीं मानते थे। बजाहिर, सोच के मुताबिक ही बर्ताव भी होता है। पर आज की हालत किसी से छिपी हुई नहीं है। मीडिया संस्थानों में आज पत्रकार एक कर्मचारी में बदल गया है और उसी हिसाब से उसके काम करने की परिस्थितियां भी बहुत ज्यादा बदल गई हैं। काम करने की परिस्थितियों में उदारीकरण के बाद या यों कहें कि 1991 में नई आर्थिक नीतियों के आने के बाद व्यापक बदलाव हुआ है।

दरअसल, इस बदलाव को समझना बेहद जरूरी है। याद कीजिए उस वक्त को जब देश के एक बड़े मीडिया समूह के मालिक ने कहा था कि उनके लिए अखबार छापना साबुन–तेल बनाने जैसा ही है। उनकी नजर में अखबार पढ़ने वाला पाठक नहीं है बल्कि ग्राहक है। यानी कहा जाए तो खबर एक उत्पाद भर है। परिभाषाओं में व्यापक बदलाव की शुरुआत मानसिकता और प्राथमिकता में आए इस बदलाव से काफी तेज हो गई और तेजी से इस बात को स्वीकार किया जाने लगा।

90 के दशक में बड़े मीडिया घरानों की बागडोर जिस नई पीढ़ी के पास आ रही थी, उसकी पढ़ाई हिंदुस्तानी परिवेश में नहीं हुई थी। जाहिर है उसे हर पश्चिमी सोच चमकदार दिख रही थी। नए मीडिया मालिकों को भी उनके इस सोच ने नए रास्ते दिखाए। जिस पर चलना ज्यादा सुरक्षित मालूम पड़ने लगा। पर जो लोग पश्चिमी तौर–तरीकों को भारतीय मीडिया में ला रहे थे, वे बड़ी चतुराई से वहां की अच्छी बातों को वहीं छोड़ दे रहे थे। इसका असर यह हुआ कि पत्रकारिता भी अन्य पेशों की तरह एक पेशे में तब्दील हो गई और पत्रकार एक कर्मचारी में।

कहा जाए तो पत्रकार पत्रकारिता नहीं बल्कि नौकरी करने को मजबूर कर दिए गए। एक बार जब बदलाव की यह आंधी चली तो इसने अपने जद में सबको ले लिया। शायद ही कोई मीडिया संस्थान इस खतरनाक आंधी की जद में आने से बचा हुआ हो। ऐसा हो जाने पर काम करने की परिस्थितियों में स्वाभाविक तौर पर परिवर्तन हुआ। काम करने के घंटे छह से बढ़कर आठ और फिर आठ से बढ़कर दस हो गए। अब तो कई मीडिया संस्थानों में बारह घंटे तक भी एक पत्रकार को काम करना पड़ता है। धीरे–धीरे तो यह जुमला भी चल पड़ा कि मीडिया में कार्यालय आने का समय तो होता है लेकिन जाने का कोई वक्त नहीं होता है।

यह सच है कि पत्रकारिता किसी समय के दायरे में बंधकर नहीं की जा सकती है। पर पत्रकारों को मजदूर बनाकर उन्हें देर तक काम करने को मजबूर करना भी न्यायसंगत नहीं ठहराया जा सकता है। लोग यह तर्क दे सकते हैं कि देश के कई बड़े संपादक अखबार छपने तक के काम को बेहद करीब से देखते थे और छप जाने के बाद ही घर जाते थे। बात बिल्कुल सही है लेकिन इस बात को जेहन में रखा जाना चाहिए कि यह कोई नियम नहीं था। यह अपनी इच्छा थी। पर आज की परिस्थितियां बिल्कुल अलग हैं। आज ज्यादा देर तक काम करने के लिए पत्रकार मजबूर हैं। एक तरफ तो पत्रकारिता को नौकरी

बना दिया गया और दूसरी तरफ जहां समर्पण और निष्ठा की जरूरत होती है वहां मीडिया मालिक और उनके प्रबंधक पत्रकारिता के उसूल याद दिलवाने लगते हैं।

जिस हिसाब से काम के घंटे मीडिया में बढ़े हैं उस हिसाब से पत्रकारों को मिलने वाली पगार नहीं बढ़ी है। आज भी मीडिया में अगर मोटी पगार किसी को मिल रही है तो वे मीडिया संस्थानों में शीर्ष पर बैठने वाले लोग हैं। नीचे के लोगों के साथ तो इतनी मुश्किलें हैं जिसका कोई हिसाब नहीं। आज भी कई ऐसे मीडिया संस्थान जो दिल्ली जैसे शहर में 2,000 रुपये प्रति महीने की नौकरी पत्रकारों को दे रहे हैं। देश के बड़े अखबारी संस्थानों में से एक अपने यहां से पत्रकारिता शुरू करने वाले को 6,000 रुपये प्रति महीने दे रहा है। चैनलों की हालत तो और खराब है। इन चैनलों में इंटर्नशिप के नाम पर साल–साल भर तक पत्रकारिता के छात्रों से काम लिया जाता है और बाद में उन्हें बहुत कम पैसे पर काम करने को कहा जाता है। सही मायने में कहा जाए तो कई चैनल तो चल ही रहे हैं इंटर्नशिप करने वाले छात्रों के बूते।

अब अगर दिल्ली जैसे महानगर में यह हाल है तो दूसरी जगहों की स्थिति का अंदाजा सहज ही लगाया जा सकता है। दिल्ली को पत्रकारिता का गढ़ माना जाता है और इसके बावजूद यहां इस क्षेत्र में काम करने की परिस्थितियां इतनी बुरी हैं। ऐसे में दूसरे केंद्रों से भला क्या अपेक्षा की जाए। दिल्ली के उदाहरण के जरिए ही बातचीत को आगे बढ़ाएं तो यह समझ में आता है कि पिछले कुछ सालों में यहां रहने के खर्च में काफी बढ़ोतरी हुई। पिछले पांच साल में यह लगभग दुगना हो गया। पर इस अनुपात में पत्रकारों के पगार में बढ़ोतरी नहीं हुई है।

यह भी एक विडंबना है कि किसी भी मीडिया संस्थान को चलाने के लिए जरूरी दूसरे संसाधनों पर लागत बढ़ी है और उस पर पैसा खर्च करने में मीडिया मालिकों को कोई दिक्कत नहीं है लेकिन जब बात पत्रकारों के पगार में बढ़ोतरी की आती है तो वे टाल–मटोल करते हुए नजर आते हैं। आखिर जब दूसरे संसाधनों पर खर्च करने में मीडिया मालिकों को कोई दिक्कत नहीं है तो पत्रकारों पर खर्च करने में हिचकिचाहट क्यों है? स्वतंत्र पत्रकारों के साथ मीडिया संस्थान इसी तरह का बर्ताव करते हैं। गिने–चुने मीडिया संस्थान ही हैं जो स्वतंत्र पत्रकारों को समय पर पारिश्रमिक देते हैं। ज्यादातर मीडिया संस्थान पांच से छह महीने में और कई तो पारिश्रमिक देने में साल भर का वक्त भी लगा देते हैं। स्वतंत्र पत्रकारों को भी बेहद कम पारिश्रमिक मिल रहा है। सही मायने में कहा जाए तो शोषण के खिलाफ आवाज उठाने वाला पत्रकार आज खुद ही कई तरह के शोषण का शिकार है।

2008 में पूरी दुनिया में आर्थिक मंदी आई। भारत पर भी उसका असर पड़ा। निजी क्षेत्रों में लोगों की नौकरियां जाने लगीं। इस स्थिति का फायदा मीडिया संस्थानों ने भी जमकर उठाया। इन संस्थानों ने भी लोगों को नौकरी से बाहर निकालना शुरू कर दिया। कुछ लोगों को निकालकर इन संस्थानों ने वहां काम कर रहे लोगों पर दबाव बनाया। माहौल ऐसा बना दिया गया कि किसी की नौकरी कभी भी जा सकती है। इस वजह से पगार बढ़ाने का मामला दबा रहा और मीडिया संस्थानों में काम करने वाले पत्रकारों ने भी कुछ बोलना मुनासिब नहीं समझा। पर सही मायने में देखा जाए तो इस दौरान मीडिया संस्थानों के मुनाफे पर बहुत ज्यादा असर नहीं पड़ा। पर मंदी के बहाने अपने यहां काम कर रहे लोगों पर दबाव बनाने और हक मारने का मौका मीडिया संस्थानों ने नहीं गंवाया।

अब हालत तो यह हो गई है कि मीडिया संस्थानों में वहां के चपरासी को ज्यादा पैसे मिलते हैं और किसी नए पत्रकार को कम पैसे। जाहिर सी बात है कि इससे उस पत्रकार के आत्मविश्वास पर बेहद नकारात्मक असर पड़ता है। इसका असर उसके काम पर भी दिखता है। इसके बावजूद यह समझ में नहीं आता कि आखिर क्या सोचकर मीडिया संस्थानों के कर्ता–धर्ता काम करने की ऐसी परिस्थितियां पैदा कर रहे हैं।

दरअसल, यह एक बेहद गंभीर समस्या है। समय पर इसके समाधान की दिशा में आगे नहीं बढ़ा गया तो पत्रकारिता का इससे बहुत ज्यादा नुकसान होगा। काम की इन बदली हुई परिस्थितियों की वजह से मीडिया से योग्य लोगों का पलायन शुरू हो गया है। कई सक्षम युवा पत्रकारिता छोड़कर जा रहे हैं। ऐसा नहीं है कि इन्हें नौकरी नहीं मिली थी इसलिए ये इस क्षेत्र को छोड़ रहे हैं, बल्कि अच्छे संस्थानों में ठीक–ठाक पगार पाने के बावजूद ये पत्रकारिता छोड़ रहे हैं। क्योंकि यहां काम करने की परिस्थितियां ऐसी हैं जो न तो संतुष्टि दे रही है और न ही संतोषजनक पैसा मिल रहा है। ऐसी स्थिति में जाहिर है कि ईमानदारी से काम करने वाले प्रतिभाशाली लोगों के लिए इस क्षेत्र में बने रहना बेहद मुश्किल हो रहा है और ऐसे लोग इस क्षेत्र को छोड़कर जा रहे हैं। अगर ऐसी स्थितियां बनी रहीं तो इस क्षेत्र के लिए यहां आने वाली नई प्रतिभा को रोक पाना बेहद मुश्किल हो जाएगा, क्योंकि जो योग्य, ईमानदार और प्रतिभावान लोग हैं, वे किसी भी क्षेत्र में अच्छा ही करेंगे।

बहरहाल, कहने के लिए देश में पत्रकारों के काम की परिस्थितियों को तय करने के लिए श्रमजीवी पत्रकार कानून है। अहम सवाल यह है कि कितने संस्थान इसका पालन करते हैं? सच तो ये है कि गिनती

के संस्थानों में ही इसका अंशतः पालन किया जाता है। किसी कानून की अनदेखी करने की किसी घटना को मीडिया बड़े जोर–शोर से उठाती है। पर इस कानून की अनदेखी पर हर तरफ सन्नाटा क्यों दिखता है? जाहिर है मीडिया मालिकों के लिए ऐसी किसी खबर को प्रकाशित या प्रसारित करना एक गुनाह सरीखा है जिससे उनके स्वार्थ को ठेस पहुंचती हो। यही वजह है कि मंदी के दौरान दूसरे क्षेत्रों के कर्मचारियों की हो रही छटनी तो मीडिया में खबर बनी लेकिन खुद मीडिया में हो रहीं छटनी पर किसी अखबार या चैनल ने खबर प्रकाशित या प्रसारित करना मुनासिब नहीं समझा। श्रमजीवी पत्रकार कानून में पत्रकारों के लिए न्यूनतम वेतन का प्रावधन भी है। पर आज ज्यादातर संस्थानों में पत्रकारों को मीडिया घराने अपनी शर्तों के मुताबिक पगार तय करके रख रहे हैं।

कई मीडिया संस्थान ऐसे हैं जहां पत्रकारों को गालियां भी खानी पड़ रही हैं। नए लोगों के साथ ऐसा ज्यादा होता है। इसे काम का दबाव के नाम पर सही ठहराने की कोशिश की जाती है। पर अगर गाली देने वाले पत्रकार को उससे वरिष्ठ कोई पत्रकार गाली सुना दे तो यकीनन उसे भी अच्छा नहीं लगेगा। बदहाली का आलम तो यह है कि कई मीडिया समूह के प्रमुख गालियों के लिए कुख्यात हो गए हैं। उनके ओहदे के खौफ की वजह से उनके मातहत उनके सामने तो कुछ नहीं बोल पाते लेकिन उनके पीछे में गरियाने के अधिकार का तो इस्तेमाल वे करते ही हैं। किसी भी सभ्य समाज में चाहे कैसी भी परिस्थितियां क्यों न हों, गाली देने को आखिर कैसे सही ठहराया जा सकता है? युवा पत्रकारों की मानसिकता पर अपने वरिष्ठ पत्रकारों की गाली या किसी भी बुरे बर्ताव का बेहद नकारात्मक असर पड़ता है। बेशर्मी की हद तो यह है कि गाली देने वाले या बुरा बर्ताव करने वाले पत्रकार अपने आपत्तिजनक बर्ताव को सीखने की प्रक्रिया बताकर सही ठहराने की कोशिश करते हैं।

बहरहाल, पत्रकारों के काम में किस तरह का बदलाव आ गया इसे एक निजी समाचार चैनल की एक घटना से समझा जा सकता है। आजकल खबरिया चैनलों में नाट्य रूपांतरण का चलन काफी बढ़ गया है। ज्यादातर खबरिया चैनलों पर अपराध से जुड़ी घटनाओं का नाट्य रूपांतरण करके प्रसारित किया जा रहा है। पहले इसके लिए कलाकारों की सेवाएं ली जाती थीं। पर अब तो इसमें काम करने के लिए भी पत्रकारों को मजबूर किया जा रहा है। एक खबरिया चैनल में काम करने वाले पत्रकार मित्र ने बताया कि उनके यहां मालिक का सीधा फरमान है कि नाट्य रूपांतरण में चरित्र के हिसाब से जो भी पत्रकार उपयुक्त लगता हो या लगती हो उसे नाट्य रूपांतरण में काम करना ही होगा। ऐसा नहीं करने वाले की क्लास सीधे मालिक लेते हैं जिनके पास प्रबंध निदेशक का ओहदा है। वहां इसका असर यह हुआ कि मन मसोसकर जिसे भी बलात्कारी और अपराधी का किरदार निभाने को कहा जा रहा है, वह उसे निभा रहा है।

आज पत्रकारों को मीडिया संस्थानों में कई वैसे काम करने पड़ रहे हैं, जिससे एक पत्रकार को दूर रखने को सही माना जाता था। कई संस्थानों में पत्रकारों से विज्ञापन बनवाने के साथ–साथ विज्ञापन लाने का काम भी करवाया जा रहा है। इसके अलावा मीडिया मालिकों के इशारे पर पत्रकारों को जनसंपर्क के काम को भी बखूबी अंजाम देना पड़ रहा है। ऐसा इसलिए किया जा रहा है कि मीडिया मालिक पत्रकारिता को एक नौकरी से ज्यादा कुछ नहीं मानते। पत्रकारों की मजबूरी यह है कि जीवन बसर करने के गरज से उन्हें नौकरी करते रहना है और इसके लिए अपने मालिक के हर फरमान को मानने के अलावा उनके पास और कोई चारा नहीं है।

बात बहुत पुरानी नहीं है जब पश्चिमी मीडिया में इस बात को लेकर बहुत बहस चली थी कि विज्ञापन विभाग और संपादकीय विभाग के बीच किस तरह का संबंध हो। इसमें सबके अपने–अपने तर्क थे लेकिन संपादकीय विभाग को विज्ञापन विभाग के साथ मिलाने का तर्क देने वाले बहुत कम थे। इस बहस के परिणामस्वरूप कई पश्चिमी मीडिया घरानों ने विज्ञापन विभाग और संपादकीय विभाग को एक बिल्डिंग में नहीं रखने का निर्णय लिया। एक अखबार ने दोनों विभाग को एक ही बिल्डिंग के अलग–अलग तल पर तो रखा लेकिन ऐसी व्यवस्था की कि दोनों विभाग के लोग आते–जाते हुए भी एक–दूसरे के सामने नहीं पड़ें। दोनों विभाग के लोगों के लिए अलग–अलग रास्ते बनवाए गए। पर इस देश की मीडिया में अब तो सब एक हो गया है और जहां अभी तक नहीं हुआ वे भी सब एक करने की राह पर बेहद तेजी से बढ़ रहे हैं।

इन बदली परिस्थितियों में अगर कोई काम करने में आनाकानी करता है तो उसे बाहर का रास्ता दिखाने से शायद ही कोई मीडिया घराना परहेज करता हो। पिछले कुछ सालों में कई ऐसे मामले सामने आए हैं जब कुछ संपादकों को प्रबंधन से हुए टकराव की वजह से अपनी नौकरी छोड़नी पड़ी है। कुछ बड़े संस्थानों में सीधे तौर पर इन चीजों की आड़ लेकर किसी को निकालना अभी भी आसान नहीं है। इसलिए वहां दूसरे रास्ते अपनाए जा रहे हैं। इन संस्थानों में पत्रकारों को इस कदर परेशान किया जाता है कि वे खुद ही उस संस्थान को छोड़ने के लिए मजबूर हो जाएं। परेशान करने के लिए काम की पाली बदलने से लेकर खबर रोकने और स्थानांतरण तक का सहारा लिया जा रहा है।

काम की बदली परिस्थितियों पर मीडिया मालिकों का यह तर्क होता है कि पत्रकारों की पगार काफी तेजी से बढ़ी है इसलिए काम की परिस्थितियां बदली हैं तो इसमें बुरा क्या है? पर इस तर्क में भी बहुत दम नजर नहीं आता है। जब पगार बढ़ने की बात होती है तो इस बात को जेहन में रखा जाना चाहिए कि किसकी पगार बढ़ी है? साथ ही यह सवाल भी पूछा जाना चाहिए कि यह पगार क्यों बढ़ी है? दरअसल, उसकी पगार काफी तेजी से बढ़ी है जो मालिकों के स्वार्थ साधने में उनकी हर तरह से मदद करने लगा। पत्रकारिता के लिए सबसे दुखद यही है कि मीडिया मालिक जो भी काम करना चाहते हैं उसके लिए पत्रकारों को ही जरिया बनाते हैं। पत्रकारों को कर्मचारी बनाने और उनसे मनमाफिक काम करवाने के लिए भी मीडिया मालिकों ने इसी रास्ते को अख्तियार किया। जाहिर है कि ऐसे कामों को अंजाम देने वाले लोग बड़े ओहदों पर हैं। वे जमकर मलाई काट रहे हैं लेकिन नीचे के स्तर पर आज भी लोग बहुत कम पैसे पर काम कर रहे हैं और उनकी चिंता न तो बड़े ओहदे पर बैठे हुए खुद को पत्रकार कहने वाले लोगों को है और न ही मीडिया मालिकों को।

■

मीडिया का 'अघोर तंत्र' है टीआरपी

जयप्रकाश सिंह

भारतीय प्रज्ञा प्रकृति को त्रिगुणात्मक मानती है। व्यक्ति और व्यवस्था सभी में सत, रज, तम की यह त्रिगुणात्मक प्रकृति विभिन्न अनुपातों में अभिव्यक्त होती है। व्यक्ति और व्यवस्था में नई प्रवृत्तियों का उद्‌भव किसी नए गुण के प्रवेश के कारण नहीं बल्कि इन प्रवृत्तियों के आनुपातिक परिवर्तन से होता है। भारतीय मनीषा तो आत्म उन्नयन के लिए की जाने वाली साधनाओं को भी सात्विक, राजसिक और तामसिक तीन श्रेणियों में बांटती है। तामसिक साधनाओं में अघोर साधना का प्रचलन विशेष रुप से रहा है और जनसामान्य इससे अधिक परिचित भी है। यह साधना शुरु तो आत्म अनुभूति के नाम पर हुई लेकिन कालांतर में यह चमत्कारी शक्तियों के अर्जन की साधना बन गयी। अहंकार विसर्जन और प्रवृत्तियों के परिमार्जन की बजाय निकृष्ट प्रवृत्तियों को संतुष्ट करने के लिए जादू–टोने और सम्मोहन जैसी चमत्कारी शक्तियों के अर्जन और प्रदर्शन की साधना बन गयी। जनसामान्य में भ्रम पैदा करना और यथार्थ से काटकर चमत्कारों की मायावी दुनिया रचना इस साधना की प्रमुख विशेषताएं बनकर उभरी। इस तामसिक साधना में अमानवीयता के पुट तो प्रारम्भ से ही थे लेकिन अमानवीयता की पराकाष्ठा तब हो गई जब इसमें शक्तियों के अर्जन के लिए 'नरबलि' जैसी प्रथा का समावेश हुआ। नर कपाल को कमण्डल मानने वाली साधना 'नरबलि' तक पहुंच गयी। यह साधना शक्ति उपासकों की बजाय शक्ति पीपासुओं की साधना बन गयी।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में टीआरपी को मीडियाई अघोर तंत्र कहा जा सकता है। अघोर तंत्र की तरह टीआरपी भी बाजारु शक्ति पीपासुओं की इच्छा से संचालित होता है। टीआरपी के जरिए व्यवस्था के शीर्ष पर बैठे कुछ अभिजन अपनी शक्ति पीपासा को शांत करने के लिए सम्पूर्ण देश की सांस्कृतिक हत्या कर देने पर उतारु हैं। अघोर तंत्र में नर बलि दी जाती है, टीआरपी तंत्र में 'सांस्कृतिक बलि' दी जा रही है। अघोर तंत्र ने आध्यात्मिक विकास के कुछ भ्रामक संकेतक गढ़े थे और अपने हितों के अनुरुप सत्य की सीमाएं भी निर्धारित की थी। टीआरपी ने मीडिया की स्थिति के आकलन के लिए भ्रामक संकेतकों को गढ़ा है और सम्पूर्ण सत्य को बाजारु सत्य के खांचे में फिट करने की कोशिश कर रहा है। टीआरपी के जरिए खुरदरे सत्य को नकारने की कोशिश हो रही है। अघोर तंत्र की तरह टीआरपी भी सम्मोहन पर बहुत बल देती है। अघोर तंत्र में सम्मोहन को एक सिद्धि माना जाता है और उसके जरिए जनता को प्रभावित करने की कोशिश होती है। टीआरपी भी बाजारु मूल्यों के प्रति एक सम्मोहन रचती है। इसके जरिए भारतीयों को उपभोक्तावादी जीवन शैली और जीवनदर्शन की तरफ सम्मोहित किया जा रहा है।

टीआरपी के जरिए सम्पूर्ण देश की 'सांस्कृतिक बलि' कैसे दी जा रही है, इसके लिए कुछ आंकड़ों को समझना आवश्यक होगा। आंकड़ों के मुताबिक भारत में कुल 24 करोड़ घर हैं। इन घरों में लगभग 14 करोड़ टेलीविजन सेट लगे हुए हैं। इन 14 करोड़ टेलीविजन सेट में से केवल 10 हजार टेलीविजिन में ऐसे उपकरण लगे हुए हैं जो यह बताते हैं कि दर्शक किस समय, कौन सा कार्यक्रम देख रहा है अर्थात 0.00714 प्रतिशत टेलीविजन सेटों में ही टीआरपी संकेतक लगे हुए हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि लगभग 14 हजार टेलीविजन में से किसी एक टेलीविजन में ही टीआरपी संकेत लगा हुआ है। एक अन्य महत्वपूर्ण और मजेदार तथ्य यही है कि अधिकांश टीआरपी संकेतक उन टेलीविजन में लगे हैं जिनकी खरीद या बिक्री शहरी क्षेत्रों में हुई है। सीधा सा मतलब यह है कि टीआरपी संकेतक से युक्त टेलीविजन शहरी क्षेत्रों तक ही सिमटे हुए हैं।

टीआरपी संकेतकयुक्त टेलीविजन सेटों के शहरों तक सीमित होने के कारण टीआरपी शहरी दर्शकों की पसंद को ही पूरे भारत की पसंद बनाकर अपने आंकड़ों में परोसती है। अब यह बहुत सामान्य सी बात है कि उच्च वर्ग और उच्च मध्यवर्ग के दर्शकों की कार्यक्रम पसंद मध्य वर्ग, निम्न मध्यवर्ग और निम्न वर्ग की कार्यक्रम पसंद से बहुत अलग होगी। औपनिवेशिक शासनकाल की बदौलत घर कर चुकी आत्महीनता के कारण उच्च वर्ग, उच्च मध्यवर्ग में सांस्कृतिक संवेदनशीलता का नितांत अभाव है। मध्य वर्ग भारतीयता और पश्चिमी मूल्यों में सामंजस्य बैठाने की कोशिश में 'त्रिशंकु' की स्थिति में है जबकि निम्न मध्यवर्ग और निम्न वर्ग भारतीय संस्कृति के प्रति आग्रही है। केवल शहरी दर्शकों की पसंद को पैमाना बनाकर उसे सम्पूर्ण भारतीय दर्शकों पर थोपना पश्चिम को भारत पर थोपने के समान है। टीआरपी तंत्र सम्पन्न

शहरी 'इण्डिया' को विविधतायुक्त 'भारत' का प्रतिनिधि बनाकर पेश करता है और यही इसकी सबसे बड़ी कमी है।

टीआरपी उस वर्ग की प्राथमिकताओं और पसंदगी को दरकिनार करने की साजिश है, जो भारतीयता का प्रतिनिधित्व करता है। यह बाजारु मूल्यों को जबरदस्ती थोप रहे मीडिया को यह कहने का अवसर देती है कि पूरा भारत क्रिकेट, क्राईम और कॉमेडी ही देखता है सनसनी और अपराध ही देखता है। बाद में मीडिया दर्शकों की पसंद के नाम पर अधिक सनसनीखेज कार्यक्रमों के निर्माण की एक श्रृंखला प्रारम्भ होती है। बाजारवादी मूल्यों पर आधारित कार्यक्रमों की यह श्रृंखला भारतीयता पर विश्वास करने वाले लोगों पर दबाव बढ़ाती है, उन्हें प्रेरित करती है कि वह भी 'मुख्यधारा' की उस उपभोक्तावादी जीवनशैली और जीवनदर्शन को अपनाए जिसे अपनाकर शेष भारत 'आधुनिक' बन चुका है। यह भारतीयों में भारतीयता के प्रति संदेह पैदा और उनकी आस्था को डिगाने का एक षड्यंत्र है। टीआरपी एक सांस्कृतिक साजिश है और आंतरिक सांस्कृतिक साम्राज्यवाद को संभव बना रही है। आंतरिक सांस्कृतिक साम्राज्यवाद, वैश्विक सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का ही एक नया आयाम है। इसके अंतर्गत किसी बाहरी रोल मॉडल को थोपने के बजाय किसी देश में उपभोक्तावाद को पूरी तरह से अपना चुके वर्ग अथवा व्यक्ति को 'रोल मॉडल' मानकर पूरे देश पर थोपने की कोशिश की जाती है।

भारत मे टीआरपी के आकलन का काम ए.सी. नीलसन नामक एक ग्लोबल मार्केट रिसर्च एजेंसी करती है। ए.सी. नीलसन के भारतीय संस्करण को टैम (टेलिविजन ऑडियंस मेजरमेंट) के नाम से जाना जाता है। यह अंतर्राष्ट्रीय पूंजी से पोषित है और बाजारु नियमों से संचालित होता है। बाजारु हितों की पूर्ति के लिए यह तंत्र आंकड़ो की जादूगरी और हेराफेरी भी करता है। टैम–टीआरपी के आकंड़ों के प्रति संदेह के कई कारण हैं। टैम के आंकड़ो पर संदेह इसके कम सैंपल साईज (बहुत कम टेलिजिवन सेट में टीआरपी संकेतकों का लगाना) और सैंपल एरिया (टीआरपी संकेतकों का शहरों तक सीमित होना) को लेकर तो उठते रहे हैं। इसके अजीबोगरीब आंकड़ों को लेकर भी समय–समय पर सवाल उठते रहे हैं। टैम की रेटिंग की विश्वसनीयता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि पिछले दिनों जब सूचना प्रसारण मंत्री अम्बिका सोनी ने टैम के आंकड़ों को लेकर सवाल उठाए और दर्शकों के पसंद के आकलन के लिए एक निष्पक्ष तंत्र की आवश्यकता बतायी तो रातोंरात दूरदर्शन के राष्ट्रीय चैनल की टीआरपी में जबरदस्त उछाल आ गया। बाद में मामला ठंडा होने पर दूरदर्शन की टीआरपी फिर से नीचे आ गयी। यह एक उदाहरण इस बात को साबित करने के लिए पर्याप्त है कि टैम–टीआरपी के आंकड़े फर्जी होते हैं, जिसका उद्देश्य दर्शकों की पंसद का आकलन नहीं बल्कि बाजारु आकाओं की हितों की पूर्ति करना है।

यह बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है कि दूरदर्शन प्रसारण को प्रारम्भ होने के 50 वर्ष बाद भी अभी तक भारत टेलीविजन से प्रसारित कार्यक्रमों की पंसदगी के आकलन के लिए कोई सार्वजनिक और निष्पक्ष तंत्र नहीं खड़ा कर पाया है। ऐसे परिप्रेक्ष्य में जब अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में सूचनाएं कूटनीतिक हथियार की शक्ल अख्तियार कर चुकी हैं और उन्मुक्त बाजार पूरी दुनिया में उपभोक्तावादी जीवनशैली को एक सर्वमान्य और अविवादित जीवन–शैली के रूप में थोपने का प्रयास कर रहा है, कार्यक्रमों के पंसदगी के आकलन के लिए निष्पक्ष और सार्वजनिक तंत्र बनाए जाने का प्रश्न और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। बाजार से प्रेरित और पोषित वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने सांस्कृतिक साम्राज्यवाद की परिघटना को जन्म दिया है। सहज और संतुलित मूल्यों पर आधारित विश्व की अधिकांश संस्कृतियां बाजारु सांस्कृतिक आक्रमण से दम तोड़ रही हैं और विश्व की सांस्कृतिक विविधता दिन–ब–दिन कम होती जा रही है। सूचना सम्प्रेषण और मनोरंजन जगत को अपनी मिट्टी से जोड़े रख कर सांस्कृतिक साम्राज्यवाद पर अंकुश लगाया जा सकता है और इसके लिए यह आवश्यक है कि सूचना और मनोरंजन के क्षेत्र में दर्शकों की पसंद के निर्धारण का काम बाजारु एंजेसियों के हाथों में सौपने के बजाय एक सार्वजनिक और निष्पक्ष तंत्र को सौपा जाए।

दर्शकों की पसंद के निष्पक्ष आकलन के लिए सार्वजनिक तंत्र के अलावा कुछ चीजें भी आवश्यक हैं। पहला यह कि टीआरपी रेटिंग के

आंकड़े साप्ताहिक नहीं बल्कि त्रैमासिक अथवा अर्द्धवार्षिक अंतराल पर जारी किए जाएं। साप्ताहिक आंकड़े मीडिया में बदहवासी और भाग. मभाग की स्थिति उत्पन्न कर देते हैं। पूरा मीडिया कुछ सफल फार्मूलों पर चलने के लिए बाध्य होता है क्योंकि सार्थक और गम्भीर प्रयोगों के लिए उसके पास समय ही नहीं होता। त्रैमासिक अथवा अर्द्धवार्षिक आकलन व्यवस्था से आंकड़ों की वस्तुनिष्ठता पर भी किसी तरह का दुष्प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि टेलीविजन पर प्रसारित होने वाले अधिकांश कार्यक्रम की समयावधि कम से कम 6 महीने तो होती है। खबरिया चैनलों में समसामयिक खबरों को छोड़ दें तो अधिकांश कार्यक्रम सालों साल चलते रहते हैं, ऐसे में त्रैमासिक आकलन व्यवस्था कम से कम खबिरया चैनलों को बदहवासी से बचाएंगी और कुछ गम्भीर विषयों को उठाने के लिए प्रेरित भी करेंगी। समय के उपलब्धता सम्पूर्ण खबरिया संसार को मानसिक उत्पीड़न से बचाएगा और गम्भीरता की तरफ अग्रसरित करेगा।

सैम्पलिंग के आकार और क्षेत्रफल को बढ़ाकर भी टीआरपी को अधिक प्रतिनिधित्वयुक्त बनाया जा सकता है। प्रारम्भिक दौर में कम से कम 10 प्रतिशत टेलिविजन सेटों में टीआरपी संकेतक लगाकर दर्शकों की वास्तविक पसंद का सही अंदाजा लगाया जा सकता है। टीआरपी को सटीक बनाने के लिए यह आवश्यक है कि टीआरपी संकेतक का संजाल शहरों की परिधि से निकलकर पूरे देश में फैले। भारत एक अतिविविधता वाला देश है जिसके कारण देश के विभिन्न हिस्सों के दर्शकों की पसंद भी अलग है। हिन्दी भाषी क्षेत्र में होते हुए भी बिहार और हरियाणा के दर्शकों की पसंद में व्यापक भिन्नता देखने को मिलती है। अब यदि दिल्ली के दर्शकों की पसंद को इन दोनो प्रदेशों के दर्शकों की पसंद माना जाएगा, तो वह हास्यास्पद भी होगा और अवास्तविक भी। इसलिए, ग्रामीण क्षेत्रों में टीआरपी संकेतकों का संजाल इसके आंकड़ों को वास्तविकता के करीब लाएगा।

मीडिया के अधःपतन पर विशेषज्ञ से लेकर जनसामान्य तक चिंतित है। चर्चाओं का दौर गर्म है, लेकिन टीआरपी के अघोरतंत्र पर किसी का ध्यान नहीं जा रहा है, जिसके बाहुपाश में मीडिया जकड़ा हुआ है, जमीन से उखड़ा हुआ है। दर्शकों की पसंद की स्वतंत्र और सार्वजनिक आकलन व्यवस्था की स्थापना कर मीडिया को टैम–टीआरपी के अघोरतंत्री सम्मोहन से मुक्ति दिलायी जा सकती है। शायद, तब मीडिया भी कर्मयोग की सात्विक साधना करे और कर्मयोगी की तरह व्यवहार करना शुरु कर दे, जिसकी हम सब अपेक्षा रखते हैं। ■

गूगल व एप्पल की पहुंच घरों के भीतर तक

लंदन। विकास के दौर में तकनीकी इतनी तेजी से अग्रसित हो रही है कि लोगों के घरों के भीतर भी होने वाली कार्यविधि अब जल्द ही आमजन तक पहुंचने वाली है। जब घरों के भीतर की चीजे भी बेपर्दा हो जायेंगी तो स्थिति क्या होगी, इसका आंकलन आसानी से किया जा सकता है।

प्रतिस्पर्धा की दौड़ में गूगल और एप्पल अपनी हद पार करते जा रहे हैं। इन दोनों अमेरिकी कंपनियों ने घरों के अंदर झांकने की तैयारी कर ली है। अपनी सैन्य सुरक्षा स्तर के अतिसंवेदनशील कैमरों की मदद से दो बड़ी कंपनियां आपके घर के अंदर की चार इंच चौड़ी चीज तक बहुत आसानी से देख सकेंगी। 3–डी तस्वीरें लेने के लिए गूगल ने शहरों में अपने विमान छोड़ दिए हैं। इसी तरह एप्पल ने जासूसी के लिए एक फर्म का अधिग्रहण किया है। यह कंपनी स्पाय–इन–द–स्काय (आकाश में जासूसी) टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल करने के लिए मशहूर है। पहले ही इसके जरिये 20 ठिकानों का परीक्षण कर लिया गया है।

बताया जा रहा है कि एपल के कैमरे इतने शक्तिशाली हैं कि कई हजार फीट की दूरी से घरों की खिड़कियों के अंदर देख सकते हैं। डेली मेल की रिपोर्ट की मानें तो यह अफगानिस्तान में आतंकी ठिकानों की पहचान के लिए इस्तेमाल की जा रही तकनीक से काफी मिलती–जुलती है। सेटेलाइट की मदद से गूगल अर्थ इमेज पर ठिकानों के मैप दिखाता है। वह भी इसमें अभूतपूर्व ढंग से सुधार करने में जुट गया है। उसके विशेष विमान चप्पे–चप्पे की 3–डी तस्वीरें उतारने के लिए आसमान में मंडरा रहे हैं।

इन दिग्गज अमेरिकी टेक्नोलॉजी कंपनियों की इस मुहिम पर विशेषज्ञों ने चिंता जताई है। उन्हें लोगों की गोपनीयता खत्म होने का डर सता रहा है। उनका कहना है कि अब घरों में खुलकर रहना भी दुष्वार होने वाला है। लोगों में यह डर बना रहेगा कि एपल और गूगल उनकी तस्वीरें तो नहीं ले रहे। कंपनियों के विमान अत्याधुनिक कैमरों से लैस हैं। ये 1,600 फीट की ऊंचाई से हर संभव एंगल से तस्वीरें लेने में सक्षम हैं। विशेषज्ञों का सुझाव है कि इससे पहले कि लोगों के घर दुनिया भर के सामने आ जाएं, उनकी इजाजत लेना जरूरी है।

खबरों की जगह गॉसिप जर्नलिज्म हावी– भावदीप कंग

मीडिया में आज वैश्वीकरण व जीडीपी वाली मानसिकता कायम होती जा रही है जिसके कारण वह वास्तविक विकास परिदृश्य से परे होकर अवसरवादिता, सरकार व बाजार के जाल में फंसता जा रहा है। इन्हीं सब मुद्दों को लेकर वरिष्ठ पत्रकार भावदीप कंग से बातचीत के कुछ अंश :

पत्रकारिता में आपका आगमन कैसे हुआ?

मुझे लिखने–पढ़ने का काफी शौक था और मैंने स्कूल में ही पत्रकारिता में आने का मन बना लिया था। स्नातक पूरी होने पर मैंने 1985 में टाइम्स ऑफ इंडिया से पत्रकारिता की शुरूआत की थी। उसके बाद मैंने सैटरडे टाइम्स, संडे ऑब्जर्वर, इंडियन एक्सप्रेस, पॉयनियर, टेलीग्राफ, आउटलुक, इंडिया टूडे आदि में काम किया और अब मैं फ्रीलांसिंग कर रही हूं। मैंने बीस वर्षों तक राजनीतिक विषयों पर लिखा। इसके बाद पिछले पांच वर्षों से मैं विकास पत्रकारिता, कृषि व खाद्य नीति पर काम कर रही हूं।

वर्तमान पत्रकारिता के दौर में आप क्या बदलाव देखती हैं?

पिछले 25 वर्षों में पत्रकारिता में काफी अंतर आया है जिसमें सबसे मुख्य अंतर सम्पादक की भूमिका में आया है। जब मैंने पत्रकारिता की शुरूआत की थी तो उस समय संपादक सब कुछ होता था और संपादकीय नीतियां संपादक तय करते थे, किन्तु आज मालिक या तो संपादक बन गए हैं या संपादकों पर हावी हो गए हैं। इसके पीछे मुख्य कारण अखबार या मैगजीन को उपभोक्ता वस्तु माना जाना है जिसे लाभ के उद्देश्य से बेचा जाता है। जबकि पहले इसे उपभोक्ता वस्तु न मानकर लोकतंत्र का प्रहरी माना जाता था। टेलीविजन के आने से भी बड़ा परिवर्तन आया है। 'ब्रेकिंग न्यूज' के कारण खबरों का विश्लेषण घट गया है। पत्रकारों में भी काफी परिवर्तन आया है। पहले पत्रकारों का वेतन कम होता था किन्तु जोश होता था। आज वेतन बढ़ गए हैं जो अच्छी बात है किन्तु इसके कारण वह आम आदमी की समस्याओं से कट गया है।

किन्तु आज पत्रकारिता जगत में सबसे बड़ी समस्या वेतन को लेकर ही दिखाई दे रही है, जिसका उदाहरण वेज बोर्ड की मांग है। इसके बारे में आपकी क्या राय है?

यह समस्या ज्यादातर भाषाई पत्रकारिता की है क्योंकि हमारे नीति निर्माता अंग्रेजी मीडिया को ही ज्यादा प्रोत्साहित करते हैं, जबकि 'सर्कुलेशन' के मामले में अंग्रेजी मीडिया काफी पीछे है और हिन्दी मीडिया के ज्यादा पाठक हैं। इसके पीछे विज्ञापन बजट भी है। विज्ञापनदाता उपभोक्तावादी पाठकों पर ध्यान देकर किसी अखबार को बजट देते हैं। हालांकि इस स्थिति में भी काफी बदलाव आ गया है। क्षेत्रीय स्तर पर लोग अखबार खरीद रहे हैं, जिसके कारण भविष्य में इनकी भी आर्थिक स्थिति मजबूत होगी और इनका प्रभाव बढ़ेगा। इसके साथ ही पत्रकारिता जगत में प्रतियोगिता बढ़ जाने के कारण भी वेतन में कमी आई है।

अंग्रेजी मीडिया को अधिक बढ़ावा देने के पीछे क्या कारण है?

ऐसा आर्थिक कारणों से हो रहा है। आज हम वैश्वीकरण की ओर बढ़ रहे हैं और विश्व अर्थव्यवस्था का हिस्सा बनना चाहते हैं। सरकार वैश्विक कंपनियों को बढ़ावा दे रही है जिसके कारण नीति स्तर पर भी अंग्रेजी को बढ़ाया जा रहा है। वहीं आज अंग्रेजी माध्यम वाले स्कूल भी तेजी से बढ़ रहे हैं जिसके कारण आगे आने वाली नई पीढ़ी भी अंग्रेजी मीडिया की ओर आकर्षित होगी। यही स्थिति विद्यमान रही तो आगे आने वाले 15–20 वर्षों के बाद अंग्रेजी मीडिया ही हावी होगा।

पत्रकारिता के दौरान आपके कुछ रोचक अनुभव?

यूपी में फिरोजाबाद में एक रेल दुर्घटना हुई थी जिसमें करीब 320 लोगों की मौत हुई थी। जब हम कवरेज के लिए दुर्घटना स्थल पर जा रहे थे तो काफी दूर से बदबू शुरू हो गई थी। वहां पहुंचते–पहुंचते इतनी हो गई कि मुंह पर स्काफ बांधना पड़ा। दुर्घटना स्थल पर जिस तरीके से लाशें बिखरी हुई थी वो बहुत ही दर्दनाक था। वहां महिलाओं व छोटे–छोटे बच्चों की लाशें बिखरी हुई थी। स्थानीय प्रशासन 6 घंटे बाद भी सक्रिय नहीं हुआ और मरने वालों की सूची भी नहीं बनी थी जिसके कारण उनके परिजनों को नहीं पता चल रहा था कि उनके सम्बन्धियों के साथ क्या हुआ। इतने में कोई 'ब्लीचिंग पाउडर' लेकर आया और लाशों पर फेंक दिया। उस समय महसूस हुआ कि मानव जीवन का मूल्य कितना कम है। ये दुर्घटना मुझे आज भी याद है और टीवी पर कोई पत्रकार जब ऐसी दुर्घटना में परिजनों से पूछता है कि आपको कैसा लग रहा है, तो बहुत दुख होता है।

राजनीतिक पत्रकारिता के क्षेत्र में 'मीडिया मैनेज्ड' का क्या स्थान है?

मीडिया में आज राजनीति, बाजार व अवसरवादी हावी होते जा रहे हैं जिसके चलते मीडिया मैनेज होना स्वाभाविक है। मीडिया आज सत्ता

का हिस्सा बन गया है। दूसरी ओर जिस सूत्र से आप खबर लेते हैं वो अपने पक्ष में खबर देता है। पत्रकार का काम निष्पक्ष होकर तथ्यों की जांच करना है लेकिन जल्द से जल्द खबर पहुंचाने के चलते यह नहीं होता है। नेताओं के भाषण दिखाकर कर्तव्य पूरा मान लिया जाता है। खबरों का विश्लेषण घटता जा रहा है। मीडिया में आज 'गॉसिप जर्नलिज्म' ज्यादा हावी हो रहा है। अखबारों के पहले पन्ने पर खबरों की जगह गॉसिप होने लगी है। इसमें एक पहलू यह भी है कि पत्रकार को सच्चाई 100 प्रतिशत पता होती है लेकिन दबाव के चलते वह केवल 50 प्रतिशत सच्चाई ही सामने ला पाता है। हालांकि इसमें यह भी सच है कि पूरे मीडिया को मैनेज करना नामुमकिन है क्योंकि एक नहीं तो दूसरा अखबार सच्चाई छाप देगा जिसके बाद दबाव में आकर सभी अखबारों को वो खबर प्रकाशित करनी होगी।

आपने राजनीतिक पत्रकारिता में 20 वर्षों तक कार्य करने के बाद विकास पत्रकारिता व कृषि पत्रकारिता की ओर रूख क्यों किया?

मेरी विकास पत्रकारिता में रूचि काफी पहले शुरू हो गई थी। वर्ष 1998 में जब मैं आउटलुक में थी तो मुझे पंजाब में किसान आत्महत्या को लेकर खबर करनी थी। उस समय हमने यह सोचा कि पंजाब आर्थिक दृष्टि से काफी संपन्न राज्य है और वहां के किसान भी मालदार होने चाहिए, इसलिए यह खबर गलत हो सकती है। वहां जाकर हमने जब लोगों से बातचीत की तो पता चला कि वहां के किसान काफी संकट में हैं, कर्ज के बोझ तले दबे जा रहे हैं और लौटाने को उनके पास पैसे भी नहीं हैं जिसके कारण उनके पास आत्महत्या के अलावा कोई रास्ता नहीं बचता। हमने पाया कि पंजाब में विकास का जो प्रारूप है उसके कारण यह सबकुछ हो रहा है। किसान की आत्मनिर्भरता सरकारी नीतियों ने खत्म कर दी है और वह बाजार पर निर्भर हो गया है। इसके अलावा एक खबर मैंने खाद्य नीति पर की कि हमारे गोदामों में अनाज सड़ रहे हैं फिर भी लोग भूखे मर रहे हैं। इस प्रकार पूरे प्रारूप में कहीं न कहीं कमी है। इस कारण से मेरी रूचि विकास पत्रकारिता में बनी।

क्या कृषि क्षेत्र में मीडिया सकारात्मक भूमिका निभा पा रहा है?

इस समय बिल्कुल नहीं। इसके पीछे कारण यह है कि हम अभी भी सस्ते अनाज वाली नीति पर चल रहे हैं। शहरी क्षेत्रों में मध्यम वर्गीय परिवार का केवल 15–20 प्रतिशत हिस्सा ही खाद्य पदार्थों पर खर्च होता है और अन्य हिस्सा बच्चों की पढ़ाई, कपड़ों, परिवहन व उपभोक्ता वस्तुओं पर खर्च हो रहा है। राष्ट्रीय मीडिया इन्हीं लोगों के लिए काम करता है। जबकि गांवों में अभी भी बड़ा हिस्सा खाद्य पदार्थों पर खर्च होता है, पर यह लोग उपभोक्तावादी नहीं हैं, तो उन पर मीडिया ध्यान नहीं देता।

क्या रेडियो कृषि को बेहतर बनाने के लिए आज भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा पा रहा है?

रेडियो की पहुंच आज भी सबसे ज्यादा है और यह कृषि क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। 'कम्यूनिटी रेडियो' इसके लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। जैसे फसल में यदि कीड़ा लग जाता है तो कम्यूनिटी रेडियो के माध्यम से उसे इसका हल बताया जा सकता है, लेकिन जिस स्तर पर यह होना चाहिए नहीं हो पा रहा है। मुझे लगता है कि सरकार कम्यूनिटी रेडियो से डरती है क्योंकि इसके माध्यम से लोकतांत्रिक आवाज उठ सकती है। इसके अलावा सुरक्षा कारण भी हो सकते हैं।

आपकी एनजीओ 'पंचवती' किस क्षेत्र में कार्य कर रही है?

यह एनजीओ पिछले 5 साल से ग्राम विकास के लिए कार्य कर रही है। इसमें पानी, रोजगार, ऊर्जा, कृषि, पशुपालन आदि मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है क्योंकि गांव का समग्र विकास इन्हीं सबके विकास से हो सकता है। एनजीओ के दो कैम्पस मध्यप्रदेश व उड़ीसा में हैं जहां किसानों व ग्रामीणों को प्रशिक्षण दिया जाता है। इन कैम्पस में सबसे पहले हमने गौशाला शुरू की जहां देसी गायें हैं। वहां देसी गाय रखने के फायदे व गाय की देखभाल का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसके अलावा वहां अलग–अलग किस्म की जैविक खाद बनती है। इसके जरिए जैविक खाद व जैविक दवा बनाने का प्रशिक्षण दिया जाता है और इसके फायदे बताए जाते हैं। वहीं हमारे पानी बचाने के मॉडल द्वारा पानी की बचत को लेकर जागरूक किया जाता है।

गौ संरक्षण को लेकर मीडिया की क्या भूमिका है?

गौसंरक्षण के लिए मीडिया कुछ नहीं कर रहा है क्योंकि मीडिया को इसके बारे में जानकारी ही नहीं है। 1960 से एक नीति चल रही है कि विदेशी गायों को बढ़ाया जाए जिससे दूध का उत्पादन बढ़ेगा। किन्तु भारत से जो गायें उत्तर व दक्षिण अमेरिका में निर्यात की गई हैं आज वो सबसे ज्यादा दूध दे रही हैं। जो गीर गायें भारत से ब्राजील गई थी वहां वो रिकॉर्ड दूध दे रही हैं जबकि भारत से यह गाय खत्म हो रही हैं। इस प्रकार जो पशु जैव विविधता है, वो धीरे–धीरे खत्म हो रही है और मीडिया इस पर ध्यान नहीं दे रहा है। इसके अलावा सरकार भी किसानों पर ध्यान नहीं देना चाहती क्योंकि वह उन्हें आत्मनिर्भर नहीं बनने देना चाहती। गायों को खत्म करना एक नीति के तहत हुआ है ताकि किसान खाद के लिए यूरिया पर निर्भर हो सकें और यूरिया की फैक्ट्रियां चलती रहें।

कृषि पत्रकारिता के लिए क्षेत्रीय मीडिया कितनी सक्रिय भूमिका निभा रहा है?

क्षेत्रीय मीडिया ग्रामीण भारत से ज्यादा जुड़ा हुआ है। बड़े अखबारों के भी क्षेत्रीय स्तर पर कार्यालय हैं और वहां की समस्याओं के लिए कुछ पृष्ठ भी निर्धारित होते हैं। लेकिन यह अखबार भी बड़े किसानों की समस्याओं को उठाते हैं और छोटे किसानों को नजरअंदाज कर देते हैं।

अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करने में मीडिया किस प्रकार से भूमिका अदा कर सकता है?

मीडिया को वैश्वीकरण और जीडीपी वाली मानसिकता से बाहर आकर अपनी सोच बढ़ानी चाहिए और सरकार से प्रश्न पूछने चाहिए कि आप कर क्या कर रहे हैं? जैसे एफडीआई यदि आ जाए तो इसका दीर्घकालिक परिणाम क्या होगा? पिछले कुछ वर्षों में सेवा क्षेत्रों में विकास हुआ है जबकि मुख्य क्षेत्र जैसे विनिर्माण, रीटेल व कृषि का विकास रूका हुआ है। आज जब पूरा विश्व मंदी की चपेट में है तो सरकर सेवा क्षेत्र को बढ़ाकर क्या कर लेगी? इसके अलावा यदि आप सारा विकास गैर नवीकरणीय स्रोतों पर करेंगे तो आप भविष्य में क्या करेंगे? इस प्रकार के प्रश्न पूछकर सरकार को जिम्मेदार और जनता को जागरूक बनाना होगा।

प्रस्तुति– नेहा जैन

पत्रकारिता के खोते मापदंड

रवि शंकर

बीसवीं सदी में सूचना क्रांति के विस्फोट के साथ–साथ पत्रकारिता का बहुविधा विकास हुआ है। लगभग 62483 पंजीकृत अखबारों और 600 से अधिक समाचार चैनलों के साथ देश के मीडिया ने पूरे विश्व में अपनी एक जगह बनाई है। आधुनिक जीवन की बढ़ती व्यस्तताओं और बदलती जीवनशैली के मद्देनजर पत्रकारिता ने अपना कलेवर भी बदला है। अब वह 24×7 यानी चौबीस घंटे, सातों दिन सजग रहती है, घटनाओं को लाइव यानी साक्षात् दिखाने की कोशिश करती है, स्टिंग यानी परदे के पीछे झांकने की चेष्टा करती है और स्थानीय मुद्दों से जुड़ने का प्रयत्न करती है। निश्चित ही आज देश में मीडिया की व्यापकता और प्रसार काफी बढ़ा है, परंतु दूसरी ओर उसका नैतिक और चारित्रिक पतन भी हुआ है। पत्रकारिता में बाजार, विज्ञापन, पैसे व सनसनी की महत्ता बढ़ी है और मानवीयता, निष्पक्षता व खबरीपने में गिरावट आई है। माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता विश्वविद्यालय, भोपाल के कुलपति श्री अच्युतानंद मिश्र कहते हैं, "आज विचार गायब हो गए हैं और समाचार की महत्ता स्थापित की गई है।" इसका परिणाम यह हुआ है कि समाचारों में भी केवल सनसनी और चटपटेपन को ही प्रमुखता मिल रही है। समाज के उच्च वर्ग की ऐय्याशियों को खबर बनाने के लिए एक पेज थ्री नामक आयाम विकसित हो गया है। पत्रकार तो बिक ही रहे हैं, अब समाचार भी बिकने लगे हैं। खबरें छापने के लिए पैसे लिए जा रहे हैं और विज्ञापनों को खबरों के रूप में छापा जा रहा है। आज स्थिति यह हो गई है कि एक पत्रकार हनीमून पर जाता है और वहां से ली गईं तस्वीरों को दिखाकर 'स्वर्ग मिल गया' की खबर चलाई जाती है। पत्रकारिता के महारथी इसका जवाब यह कह कर दिया करते हैं कि आज पत्रकारिता के मायने बदल रहे हैं। परंतु सवाल यह है कि क्या पत्रकारिता के मायने बदले जा सकते हैं? क्या उसके मूल्यों को बदला जा सकता है?

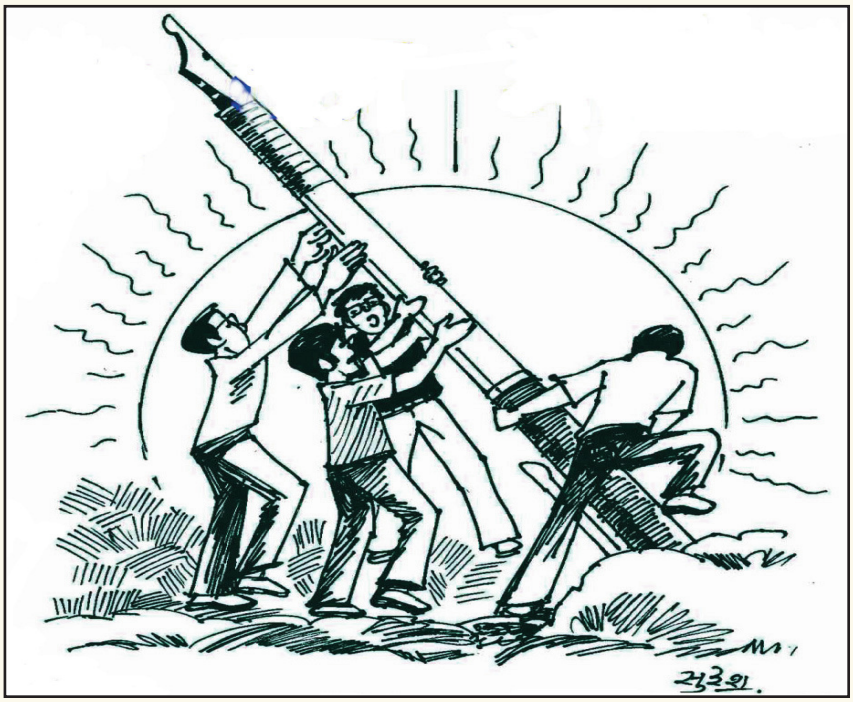

यह सवाल वास्तव में एक दार्शनिक सवाल है और अध्ययन व स्वाध्याय से दूर आज के पत्रकार न केवल इसका उत्तर नहीं दे सकते, बल्कि वे इसके उत्तर को समझने की भी क्षमता नहीं रखते। यह सवाल किसी भी वस्तु के मौलिक गुणधर्मों को बदलने की गंभीर दार्शनिक समस्या से जुड़ा हुआ है। वास्तव में यह सवाल ऐसा होना चाहिए कि क्या किसी वस्तु के मौलिक गुणधर्म को बदला जा सकता है? उदाहरण के लिए सूरज का ऊष्मा उत्सर्जित करना, जल का ठंडा होना और आग का जलाना। क्या सूरज गर्मी देना बंद कर सकता है? हां, कर सकता है, लेकिन तब वह सूरज नहीं रह जाएगा। ब्रह्मांड में ऐसे अनेक ठंडे तारे हैं, परंतु वे सूरज नहीं कहलाते। क्या जल स्वाभाविक रूप से गर्म हो सकता है? हां, लेकिन तब वह जल नहीं रह जाएगा। क्या आग जलाना छोड़ सकती है? हां, लेकिन तब वह आग नहीं रह जाएगी। इसी प्रकार क्या पत्रकारिता अपने गुणधर्म को छोड़ सकती है? क्या वह जन सरोकारों से स्वयं को पृथक कर सकती है? हां, लेकिन तब वह पत्रकारिता नहीं रह जाएगी, जैसा कि आज हो गया है। क्या आज के अखबारों में जो खबरें या फिर खबरों के नाम पर जो कुछ छपता है, उसे पत्रकारिता कहा जा सकता है? यह एक गंभीर और बुनियादी सवाल है, जिस पर गंभीर और ठोस बहस की जरूरत है।

ध्यान देने की बात यह है कि भले ही आधुनिक पत्रकारिता का जन्म और विकास यूरोप में हुआ है, भारत में इसका एक स्वतंत्र स्वरूप विकसित हुआ। यह स्वरूप पश्चिम के स्वरूप से न केवल भिन्न था, बल्कि कई मायनों में उससे काफी बेहतर भी था। भारत में पत्रकारिता अमीरों के मनोरंजन के साधन के रूप में विकसित होने की बजाय स्वतंत्रता संग्राम के एक साधन के रूप में विकसित हुई थी। इसलिए जब 1920 के दशक में यूरोप में पत्रकारिता की सामाजिक भूमिका पर बहस शुरू हो रही थी, भारत में पत्रकारिता ने इसमें प्रौढ़ता प्राप्त कर ली थी। 1827 में राजा राममोहन राय ने पत्रकारिता के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखा था, "मेरा सिर्फ यही उद्देश्य है कि मैं जनता के सामने ऐसे बौद्धिक निबंध उपस्थित करूं, जो उनके अनुभवों को बढ़ाए और सामाजिक प्रगति में सहायक सिद्ध हो। मैं अपने शक्तिशाली शासकों को उनकी प्रजा की परिस्थितियों का सही परिचय देना चाहता हूं ताकि शासक जनता को अधिक से अधिक सुविधा देने का अवसर पा सकें और जनता उन उपायों से परिचित हो सके जिनके द्वारा शासकों से सुरक्षा पायी जा सके और उचित मांगें पूरी कराई जा सकें।" माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता विश्वविद्यालय, भोपाल के पूर्व कार्यकारी निदेशक प्रोफेसर रामशरण जोशी ने अपने एक लेख में इसकी ओर इंगित करते हुए लिखा है, "1857 से 1947

की भारतीय भाषायी पत्रकारिता का मूल चरित्र मिशनवादी था। पत्रकारिता का यह मिशनवाद एकरूपी नहीं था, बहुरंगी था। इसकी कई उपधाराएं थीं– सामाजिक सुधारवाद, नारी उत्थान, अछूतोद्धार, स्वभाषा, राष्ट्रीय जागरण, आध्यात्मिक उत्थान, साम्राज्यवाद विरोध, संपूर्ण आजादी आदि।" सत्य एवं न्याय की प्रतिष्ठा में अखबारों की महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य भूमिका को लक्ष्य करते हुए गांधीजी ने कहा था, "मेरा ख्याल है कि ऐसी कोई भी लड़ाई जिसका आधार आत्म–बल हो, अखबार की सहायता के बिना नहीं चलायी जा सकती।" इससे यह स्पष्ट होता है कि भारत में पत्रकारिता का सामाजिक स्वरूप एकदम प्रारंभ से भी विकसित हो गया था और उसमें भारतीयता की झलक साफ दिखा करती थी। भारत की राजनीतिक स्वाधीनता के साथ–साथ भारत के सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों की रक्षा उसका एक प्रमुख उद्देश्य हुआ करता था। वह समाज में सुधार तो देखना चाहता था, परंतु उसे अपनी जड़ों से काटना नहीं चाहता था। समाज में सुधार के लिए यूरोप के अंधानुकरण को कभी भी पोषित नहीं किया गया और सबसे प्रमुख बात यह थी कि पत्रकारिता बाजार के हानि–लाभ के सिद्धांतों की बजाय सामाजिक मूल्यों के विकास–पतन के आधार पर की जाती थी। आज की भांति वह केवल घटनाओं की जानकारी देने तक सीमित नहीं था, बल्कि वह घटनाओं की देश और जन सरोकारों के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करती थी। समाचारों की बजाय विचारों को महत्व दिया जाता था। समाचारों में भी समाचार की सनसनी की बजाय समाचारों की महत्ता को वरीयता दी जाती थी। जनता क्या चाहती है, की बजाय जनता को कैसा होना चाहिए, के हिसाब से पत्रकारिता होती थी। भारत में विकसित हुआ पत्रकारिता का यह स्वरूप पश्चिम की पत्रकारिता से बिल्कुल अलग था।

स्वाधीनता के बाद परिस्थितियां बदलीं। स्वाधीनता मिलने के बाद से ही पत्रकारिता के इस भारतीय स्वरूप के सामने चुनौतियां भी बढ़ने लगीं थीं। इसकी ओर ही इंगित करते हुए 15 अगस्त, 1947 में 'जनता' ने लिखा था, "भारत में पत्रकारिता के समक्ष तीन प्रकार की कठिनाइयां हैं। पहली समस्या वित्त की है। दूसरी चुनौती है, स्वतंत्र समाचार पत्रों के पूंजीवादियों से संबंध, जो समाचार पत्रों को लाभ कमाने के साधन के रूप में विकसित करने और इसके द्वारा प्रतिक्रियावादी आर्थिक सिद्धांतों को स्थापित करने की कोशिश कर रहे हैं। प्रबंध संपादकों द्वारा पूंजीवादियों के हितों के विरुद्ध किसी भी विचार को प्रकाशन से रोका जा रहा है। तीसरी समस्या है, व्यावसायिक पत्रकार, जो अपने कैरियर की आवश्यकता को पूरा करने के लिए पत्रकारिता के सिद्धांतवादी व मिशनरी भूमिका को दबा देते हैं।" वास्तव में यह तीसरी समस्या ही सबसे बड़ी समस्या है। व्यावसायिक पत्रकार और पत्र–पत्रिकाएं, दोनों की जो श्रृंखला विकसित हुई है, उसे पत्रकारिता के सिद्धांतों और उद्देश्यों से कोई लेना देना नहीं है। टेलीविजन चैनलों की तो बात ही करना व्यर्थ है। उनका तो जन्म ही यूरोप की नकल से हुआ है। उनसे किसी भी प्रकार की भारतीयता की अपेक्षा करना ऐसा ही है जैसे कोई बबूल का वृक्ष बोए और आम के फलने की आशा करे। ऐसी पत्र–पत्रिकाएं व टेलीविजन चैनल "गे डे" यानी कि समलैंगिकता दिवस मनाते हैं, संस्कृति की रक्षा की बातों को 'मोरल पोलिसिंग' कहकर बदनाम करने की कोशिशें करते हैं, भारतीय परंपराओं और जीवन मूल्यों का मजाक उड़ाते हैं, खुलकर अश्लीलता, वासनायुक्त जीवन और अमर्यादित आचरणों का समर्थन करते हैं और कहते हैं कि यह सब वे "पब्लिक डिमांड" यानी कि जनता की मांग पर कर रहे हैं। आज यदि महात्मा गांधी या राजा राममोहन राय या विष्णु हरि पराड़कर या माखनलाल चतुर्वेदी जीवित होते तो क्या वे स्वयं को पत्रकार कहलाने की हिम्मत करते? क्या उन जैसे पत्रकारों की विरासत को आज के पत्रकार ठीक से स्मरण भी कर पा रहे हैं? क्या आज के पत्रकारों में उनकी उस समृद्ध विरासत को संभालने की क्षमता है? ये प्रश्न ऐसे हैं, जिनके उत्तर आज की भारतीय पत्रकारिता को तलाशने की जरूरत है, अन्यथा न तो वह पत्रकारिता ही रह जाएगी और न ही उसमें भारतीय कहलाने लायक कुछ होगा। ■

बच्चों द्वारा बाल समाचार पत्र का प्रकाशन शुरू

बैकुण्ठपुर (गोपालगंज)। प्रखंड के उत्क्रमित मध्य विद्यालय दुबौली कन्या में गत माह स्कूली बच्चों ने बाल समाचार पत्र (बाल सोच पर आधारित) का पहली बार प्रकाशन किया, जिसका विमोचन वरीय साधनसेवी जयश्री प्रसाद एवं डीडीओ राजकिशोर शर्मा ने संयुक्त रूप से किया।

ज्ञातव्य है कि अपग्रेड मिडिल स्कूल दुबौली जिले में यह पहला विद्यालय है, जहां बच्चों ने सभी तथ्यों पर आधारित समाचार पत्र का प्रकाशन किया। प्रखंड शिक्षा सुरेश कुमार के निर्देश में चार पन्नों में प्रकाशित समाचार पत्र में शिक्षा, चिकित्सा, सामान्य ज्ञान, चित्र प्रदर्शनी सहित सभी आवश्यक तथ्य मौजूद थे। इस मौके पर एक कार्यक्रम का भी आयोजन किया गया। जिसमें गुड़िया कुमारी, सुमन कुमारी, ज्ञांति, ममता, अलका पाण्डेय, वंदना सिंह, हीना, रुपमाला, संगीता, संजू, विक्की, विशाल, अमन सहित कई छात्र–छात्राओं ने भाग लिया। इस अवसर पर सीआरसीसी सुरेश प्रसाद यादव, विनय कुमार मांझी, मुखिया सुरेश प्रसाद, ज्योति भूषण सिंह, लक्ष्मी लाल राम, पिंकी कुमारी, झुन्ना कुमार, तारकेश्वर कुमार, मुर्सीद आलम, रामलखन सिंह, प्रधानाध्यापक उपेन्द्र राम आदि सभी लोगों ने बच्चों के इस सराहनीय कदम की प्रशंसा की। बताते चले कि यह बाल समाचार पत्र प्रत्येक माह में प्रकाशित किया जाएगा।

'हिंदी केसरी' माधवराव सप्रे

सूर्यप्रकाश

भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में 19वीं सदी का अंतिम दशक एवं बीसवीं सदी का पहला दशक मील का पत्थर साबित हुए। यह समय देश में राजनीतिक, साहित्यिक एवं पत्रकारीय सुदृढ़ता के दशक माने जाते हैं। यह वह दौर था जब भारत की सुप्त चेतना जाग्रत हो रही थी, जागरण का यह काम कर रहे थे देशभक्त पत्रकार एवं क्रांतिकारी। उस दौर में प्राय क्रांतिकारी और पत्रकार एक दूसरे के पूरक थे।

यह दौर था तिलक युग। जब पत्रकारिता ने जन–जन में स्वदेशी एवं स्वतंत्रता की अलख जगाई थी। तिलक स्वयं पत्रकार थे, 'मराठा' एवं 'केसरी' माध्यम से तिलक ने देश के सरोकारों को जानने का काम किया था। उसी दौर के पत्रकार थे पं. माधवराव सप्रे।

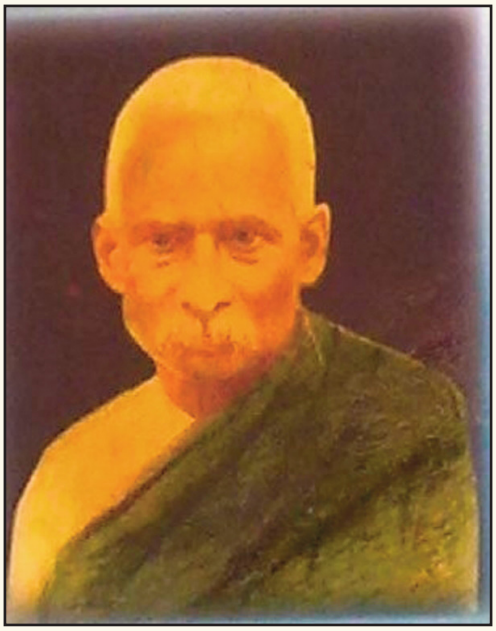

माधवराव सप्रे का जन्म मध्य प्रदेश के दमोह जिले के पथरिया ग्राम में 19 जून, 1871 को हुआ था। उनके पिता ने खराब आदतों के चलते घर की समस्त संपत्ति नष्ट कर दी। घर चलना कठिन हो गया था, जिसके बाद बड़े भाई रामचन्द्रराव ने परिवार का संचालन किया। माधवराव दो वर्ष के ही थे कि बड़े भाई रामचन्द्रराव का निधन हो गया। जिसके बाद मंझले भाई बाबूराव ने विपरीत परिस्थितियों में परिवार के खर्चों को वहन करने के लिए नौकरी की। जब माधवराव चार वर्ष के थे बाबूराव ने उन्हें बिलासपुर बुला लिया। बिलासपुर में ही माधवराव ने मिडिल स्कूल तक की शिक्षा ग्रहण की। सन 1887 में उन्होंने मिडिल की परीक्षा पास की। बिलासपुर में हाईस्कूल नहीं था, हाईस्कूल पढ़ने के लिए उनको रायपुर भेजा गया। माधवराव ने हिंदी की सेवा का प्रण रायपुर में ही लिया था। रायपुर की धरती ने उनको हिंदी सेवा की जो प्रेरणा दी वह जीवन पर्यंत कायम रही।

माधवराव सप्रे का विवाह सन 1889 में हुआ, इसी वर्ष उन्हें एंट्रेंस की परीक्षा भी देनी थी। परंतु ऐन वक्त पर वे बीमार पड़ गए जिस कारण वे 1890 में एंट्रेंस की परीक्षा न दे सके। जिसके बाद वे आगे की पढ़ाई के लिए जबलपुर चले गए। वहां उन्होंने अपने पाठ्यक्रम के अलावा विभिन्न गंभीर विषयों का अध्ययन किया। किंतु, इस दौरान उनको दो दुखद घटनाओं को सहना पड़ा। एक तो वे बीमार पड़ गए, दूसरे उनकी माता का देहांत हो गया। उस समय उनके ससुर की इच्छा थी कि वे रायपुर में ही तहसीलदार की नौकरी स्वीकार कर लें। उन्होंने इसके लिए उच्च अधिकारियों को राजी भी कर लिया था किंतु माधवराव का मन नौकरी में नहीं पत्रकारिता में था।

उस दौरान देश में स्वतंत्रता की आंधी चारों ओर चल रही थी। लोकमान्य तिलक के 'केसरी' और 'मराठा' जैसे पत्रों के माध्यम से स्वदेशी एवं स्वतंत्रता की अग्नि प्रखर हो रही थी। माधवराव भी पत्रकारिता के क्षेत्र में आना चाहते थे, किंतु पत्रकारिता उस समय में आज की भांति व्यवसाय नहीं था। जिससे लाभ अर्जित किया जा सके। अतः उन्होंने पीडब्ल्यूडी में ठेकेदारी की उनको इस धंधे में नुकसान हुआ। वे अपने भाई पर भी अत्यधिक निर्भर नहीं रहना चाहते थे। एक दिन उन्होंने पत्नी से कुछ जेवर लिए और ग्वालियर के लिए चल पड़े और ग्वालियर में ही एफ.ए. में दाखिला ले लिया। इस कठिन वक्त में ही उनको एक और आघात सहन करना पड़ा। ग्वालियर में ही उनको पत्नी के देहांत की सूचना मिली। माधवराव के लिए यह दिन कितने संघर्ष के रहे होंगे यह समझना कठिन नहीं है। उन्होंने दुख को सहते हुए भी अपनी पढ़ाई जारी रखी। सन 1898 में उन्होंने बी.ए. की उपाधि प्राप्त की। इसके बाद उन्होंने अपने भाई के समझाने पर दूसरा विवाह कर लिया। दूसरी पत्नी पार्वती भी सुलक्षणा थीं। वे उनके समस्त कार्यों में उनको सहयोग करती थीं।

सन 1899 में उन्होंने पेंड्रा रोड के राजकुमार कॉलेज में अध्यापन कार्य शुरू किया। किंतु, अध्यापन कार्य उनको संतुष्ट नहीं करता था। पत्रकारिता की ललक उनके मन में अब भी जीवित थी, जिसके लिए वे नौकरी के माध्यम से धन संग्रह कर रहे थे। सन 1900 में उनकी परिकल्पना 'छत्तीसगढ़ मित्र' मासिक पत्रिका के रूप में साकार हुई। उनके मित्र वामनराव लाखे पत्रिका के प्रकाशक बने एवं रामराव चिंचोलकर ने उनके साथ संपादक का दायित्व संभाला।

माधवराव सप्रे ने 'छत्तीसगढ़ मित्र' के प्रवेशांक में पत्रिका के उद्देश्यों को 'आत्म परिचय' शीर्षक के अंतर्गत स्पष्ट करते हुए लिखा–

''सम्प्रति छत्तीसगढ़ विभाग को छोड़ ऐसा एक भी प्रांत नहीं है जहां दैनिक, साप्ताहिक, मासिक या त्रैमासिक पत्र प्रकाशित न होता हो। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि सुसम्पादित पत्रों के द्वारा हिंदी भाषा की उन्नति हुई है। अतएव यहां भी 'छत्तीसगढ़ मित्र' हिन्दी भाषा की उन्नति करने में विशेष प्रकार से ध्यान दे। आजकल भाषा में बहुत सा कूड़ा–कर्कट जमा हो रहा है, वह न होने पावे इसलिए प्रकाशित ग्रंथों पर प्रसिद्ध मार्मिक विद्वानों के द्वारा समालोचना भी कहें।''

(शब्द सत्ता, मध्य प्रदेश में पत्रकारिता के 150 साल, विजयदत्त श्रीधर)

माधवराव सप्रे ने 'छत्तीसगढ़ मित्र' का प्रकाशन छत्तीसगढ़ क्षेत्र में

हिंदी एवं शिक्षा के प्रचार–प्रसार के लिए ही किया था। 'छत्तीसगढ़ मित्र' ने इस उद्देश्य को पूरा भी किया। किंतु, 'छत्तीसगढ़ मित्र' को तत्कालीन जमीदारों और राजाओं की ओर से अपेक्षित सहयोग नहीं प्राप्त हुआ। इस व्यथा को स्पष्ट करते हुए 'छत्तीसगढ़ मित्र' संपादक ने लिखा–

''अत्यन्त शोक और कष्ट से कहना पड़ता है कि मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ विभाग में राजा–महाराजा, श्रीमान तथा जमींदारों की इतनी विपुलता होने पर भी उनमें कोई भी विद्योतेजन की ओर यथावश्यक ध्यान नहीं देते। वे इस बात पर विचार नहीं करते कि विद्या की उन्नति करने में जब तक वे उदासीन बने रहेंगे तब तक समाज की प्रगति नहीं हो सकती।'' (शब्द सत्ता, मध्य प्रदेश में पत्रकारिता के 150 साल, विजयदत्त श्रीधर)

'छत्तीसगढ़ मित्र' को आर्थिक मोर्चे पर काफी संघर्ष करना पड़ता था, फिर भी माधवराव जी ने पत्रकारिता के मानदंडों से कभी समझौता नहीं किया। पत्र में प्रकाशित सामग्री के प्रति वे पूर्ण सचेत रहते थे। संवाददाताओं को भी वे यही सत्य एवं तथ्य पर आधारित समाचार देने के लिए ही कहते थे। जिसका उदाहरण है 'चाहिए' शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित यह विज्ञापन–

''छत्तीसगढ़ मित्र' के लिए हिन्दुस्थान के बड़े–बड़े नगरों तथा राज संस्थानों, विशेषतः छत्तीसगढ़ विभाग के प्रायः संपूर्ण देशी रजवाड़ों तथा जमींदारियों से चतुर और विश्वास करने योग्य संवाददाता चाहिए। संवाददाताओं को स्मरण रहे कि सत्य–सत्य समाचार भेजें झूठ–मूठ किसी पर आक्षेप या गपोड़ी कपोल–कल्पित बातें कदापि न लिखें।'' (शब्द सत्ता, मध्य प्रदेश में पत्रकारिता के 150 साल, विजयदत्त श्रीधर)

माधवराव सप्रे एवं साथियों ने 'छत्तीसगढ़ मित्र' को विशेष प्रयासों से दो वर्ष तक प्रकाशित करना जारी रखा। आय तो होती नहीं थी, लेकिन जो कुछ भी चन्दा अथवा विज्ञापन से प्राप्त होता था वे उसकों भी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर देते थे। वर्ष 1901 का आय–व्यय का लेखा–जोखा प्रस्तुत करते हुए संपादक ने लिखा था–

''मित्र' के निकलने से पहले ही हमने सोच लिया था कि हमें घाटे के सिवाय कुछ लाभ न होगा। परंतु छत्तीसगढ़ में विद्या की वृद्धि, स्वदेश में ज्ञान का प्रसार, नागरी की उन्नति और हिन्दी साहित्य में सत्य समालोचना द्वारा सत्य विचार की जागृति करने के हेतु जिस समय हमने 'मित्र' को जन्म दिया उसी समय हमने यह भी दृढ़ संकल्प कर लिया था कि इस कार्य में चाहे जैसी हानि और कठिनाई सहनी पड़े पर हम तीन वर्ष तक इसे अवश्य चलावेंगे।'' (शब्द सत्ता, मध्य प्रदेश में पत्रकारिता के 150 साल, विजयदत्त श्रीधर)

'छत्तीसगढ़ मित्र' के दो वर्ष बीत गए किंतु वह घाटे में ही चलता रहा। जिसके कारण माधवराव सप्रे एवं साथियों को पत्र बंद करने का कठिन निर्णय लेना पड़ा। अपनी व्यथा को उन्होंने इन शब्दों में लिखा–

''हमारे संकल्पानुसार परमात्मा की कृपा से दो वर्ष बीत गए, और हमारे दुर्भाग्य से दोनों वर्ष हमें घाटा ही उठाना पड़ा। अब यह तीसरा वर्ष है। देखना चाहिए कि इसका क्या परिणाम होता है? यदि इस वर्ष भी ऐसे ही घाटा उठाना पड़ा तो समझ लिजिए कि आपके प्रिय 'मित्र' के सौ वर्ष पूरे हो चुके और फिर बड़े दुख से लिखना पड़ता है कि यही इसकी आयु का अंतिम वर्ष भी होगा।'' (शब्द सत्ता, मध्य प्रदेश में पत्रकारिता के 150 साल, विजयदत्त श्रीधर)

शुरूआती दो वर्षों की भांति ही 'छत्तीसगढ़ मित्र' तीसरे वर्ष भी घाटे में ही रहा। जिसके कारण सप्रे जी को प्रकाशन बंद करने का फैसला करना पड़ा। यह मासिक पत्रिका बंद तो हो गई किंतु छत्तीसगढ़ में साहित्य, पत्रकारिता एवं भाषा के लिए अपना महत्वपूर्ण योगदान दे गई।

'छत्तीसढ़ मित्र' के 13 अप्रैल, 1907 में नागपुर से शुरू होने वाले 'हिंदी केसरी' में भी सप्रे जी ने अपना योगदान दिया। जिसने विदर्भ क्षेत्र में हिंदी पत्रकारिता के प्रचार–प्रसार के लिहाज से महत्वपूर्ण योगदान दिया। माधवराव सप्रे जी स्वयं को आजीवन पत्रकारिता के क्षेत्र में होमते रहे। सन 1920 में माखनलाल चतुर्वेदी जी के संपादन में प्रकाशित होने वाले पत्र 'कर्मवीर' में भी उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से अपना योगदान दिया।

माधवराव सप्रे का जीवन पत्रकारिता, साहित्य एवं भाषा के उत्थान को समर्पित था। हिंदी पत्रकारिता के विकासक्रम में माधवराव सप्रे का महत्वपूर्ण योगदान था, जिसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। उनका समस्त जीवन संघर्षपूर्ण ही रहा किंतु, वे कभी मुसीबतों के वक्त भी पीछे नहीं हटे। पत्रकारिता के क्षेत्र की वर्तमान एवं आगामी पीढ़ीयों के लिए उनका समस्त जीवन अनुकरणीय है।

■

मैत्री संबंधों में दरार डालता मीडिया

नई दिल्ली। मीडिया की गतिविधियों के कारण चीन और भारत के बीच सुधरते व्यापारिक और रणनीतिक संबंधों को झटका लगा है। चीन में लगातार ब्लॉग में प्रकाशित हो रहा है कि चीन द्वारा लद्दाख के समीप एक खगोलीय यंत्र स्थापित करने में जापान और दक्षिण कोरिया चीन की मदद कर रहा है। इसे भारतीय मीडिया ने चीन के आधिकारिक बयान के रूप में दिखाया था। जबकि सच तो यह है कि यह खबर चीन की गैर–आधिकारिक वेबसाइट पर थी और ना ही लद्दाख के समीप ऐसा कोई क्षेत्र है।

इसी बात को मद्देनजर रखते हुए सिंघापुर के एक विश्वविद्यालय इंस्टीट्यूट आफ साउथ ऐशिया स्टडीज़ ने भारत–चीन संबंधों पर प्रेस की भूमिका को लेकर कार्यशाला रखी थी। जिसमें दोंनो पक्षों के लोगों ने कहा कि मीडिया तो भारत और चीन के द्विपक्षीय संबंधों को मजबूत बनाने की कोशिश करता है।

हालांकि इस कार्यशाला में विदेशी मीडिया पर भी कहा गया कि विदेशी मीडिया के कुछ हिस्से भी भारत और चीन के संबंधों में तनाव फैलाने का काम करते हैं।

अंतरजाल का भ्रमजाल

वन्दना शर्मा

ई–मेल नहीं चेक किया तो बेचैनी हो जाती है। फेसबुक पर चैटिंग नहीं की तो कुछ गुम हो गया लगता है। यह समस्या लगभग एक तिहाई इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की है। इंटरनेट ने सूचना जगत को गतिमान करने का कार्य किया है किंतु अब फेसबुक, ट्विटर जैसी सोशल नेटवर्किंग साइट्स निजी जिंदगी में भी दखल देने लगी हैं। हाल ही में हुए एक सर्वे में यह सामने आया कि ब्रिटेन में एक तिहाई तलाक का कारण फेसबुक है। भारत में भी ऐसे ही एक मामले में फेसबुक प्रोफाइल अपडेट न करने पर पत्नी अपने पति के खिलाफ हाईकोर्ट तक जा पहुंची। जाहिर है कि जो सोशल नेटवर्किंग साइट्स लोगों से जुड़ने का आसान माध्यम हैं वही अब विवादों का पर्याय भी बनने लगी हैं। दरअसल, सोशल नेटवर्किंग साइट्स अब सूचनाओं के संप्रेषण और आदान–प्रदान से आगे बढ़कर टिप्पणियों एवं फोटो शेयर करने की राह पर चल पड़ी हैं। हम खुद को इस कदर ढ़ाल चुके हैं कि अब इंटरनेट हमारे लिए न होकर हम इंटरनेट के लिए ही हो गए हैं।

एक बड़े स्तर पर सोशल नेटवर्किंग के माध्यम से फैलती ये सूचनाएं एक ओर तो लोगों को पास लाने व आपस में जोड़ने का दावा करती हैं तो वहीं ये दूसरी ओर लोगों को एक–दूसरे से दूर करने का भी काम कर रही हैं। यह हमारे बीच एक बड़ी समस्या का रूप धारण करने जा रही है। हालांकि अभी हम इसके प्रभाव या परिणामों के आकलन कर पाने से ज्यादा इसके शिकार बनने में दिलचस्पी ले रहे हैं, जो हमें एक ग़लत दिशा में बढ़ने को उकसा रहा है।

आलम ऐसा हो गया है कि हमें यह जानकारी तो पूरी होती है कि फेसबुक पर किसने कब, क्या अपडेट किया है लेकिन बगल वाले घर में कौन रहता है इसकी कोई खबर नहीं! हाल ही में, यह बात सामने आई है कि युवाओं के सोशल नेटवर्किंग साइट्स का अधिक इस्तेमाल करने से बुजुर्गों का भी सम्मान घट रहा है। जी! हाल ही में हुए एक सर्वे में यह पाया गया है कि 55 वर्ष से अधिक की उम्र के 81 फीसदी लोगों ने यह माना कि उनके बच्चे इंटरनेट के आदी होने के कारण उनकी बात पर ध्यान नहीं देते। उनका सम्मान नहीं करते हैं।

यह बात गौर करने लायक है कि केवल भारत में नौ करोड़ से अधिक इंटरनेट उपयोगकर्ता हैं। जिनमें से लगभग 80 फीसदी लोग स्मार्टफोन के ज़रिये इंटरनेट का इस्तेमाल और 88 फीसदी देर रात तक फेसबुक से चैटिंग करते हैं। इंटरनेट अब लोगों के जीवन को पूरी तरह प्रभावित कर चुका है। यूरो आरएसजीसी द्वारा किए गए सर्वे से यह बात सामने आई है कि इंटरनेट के इस्तेमाल से 69 फीसदी लोग शारीरिक रूप से और 64 फीसदी मानसिक रूप से आलसी हो गए हैं। लोग अपना अधिकांश समय स्क्रीन के आगे बैठे–बैठे बिता देते हैं।

कुछ चौंका देने वाले ऐसे आंकड़े भी सामने आए हैं जिनमें 32 फीसदी भारतीय अभिभावकों ने यह माना है कि उनके बच्चे तकनीक और प्रौद्योगिकी का ग़लत रूप से इस्तेमाल कर रहे हैं।

हाल ही में, जापान के शिक्षाशास्त्रियों ने यह चिंता जताई है कि उनके बच्चे बिना कैलकुलेटर के जोड़ना घटाना ही भूल गए हैं। वहीं चीन में ऐसे केंद्रों की स्थापना की जा रही है जहां बच्चों को केवल इसलिए भेजा जाता है ताकि वे वहां रहकर कुछ समय के लिए खुद को इंटरनेट से दूर रख सकें। इंटरनेट ने सूचनाओं के संकलन एवं संप्रेषण की राह को आसान किया है। किंतु, सूचनाओं के विध्वंसक रूप ने समस्याओं में इजाफा भी किया है। साथ ही सार्वजनिक आचरण को भी प्रदूषित करने का कार्य किया है। जिसका पर्याय हैं मानहानि के बढ़ते मामले। यह तो बात हुई व्यक्तिगत प्रभाव की, लेकिन बड़े स्तर पर आए बदलावों की ओर देखा जाए तो वहां भी कुछ ऐसा ही है।

ऐसे समय में, जब हर पल कीमती है तब अधिकतर समय चैटिंग को देना क्या चिंताजनक नहीं है? हमारी कार्यक्षमता एवं समय प्रबंधन पर भी इसका विपरीत प्रभाव पड़ा है। राष्ट्र की श्रम शक्ति यदि सोशल नेटवर्किंग साइट्स में ही व्यस्त रहेगी तो विकास के पैमानों को भी कम करना पड़ेगा। स्पष्ट है कि जो इंटरनेट सूचना तकनीक की दुनिया में वरदान के रूप में हमें प्राप्त हुआ था उसके सदुपयोग के अवसर को हमने गंवा दिया है।

आवश्यकता आविष्कार की जननी है। सूचना जगत को गतिमान करने की आवश्यकता के लिए इंटरनेट का प्रादुर्भाव हुआ था। किंतु, यह आविष्कार अब हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं बल्कि भ्रमित करने लगा है। इसके दोषी भी हम ही हैं जो लगातार अंतरजाल के भ्रमजाल में ही फंसे रहते हैं। सवाल यह है कि इंटरनेट के दुष्प्रभावों से बचने का तरीका क्या है? इसका जवाब हमें खुद ही तलाशना होगा। क्रांति के माध्यम, सूचना के संप्रेषण एवं नेटवर्किंग में सहायक साइट्स का हमें उपयोग करने की आवश्यकता है न कि उनके लिए जीने की। युवा वर्ग सोशल नेटवर्किंग साइट्स के लिए जीने लगा है। यही समस्या का कारण है। आवश्यकता है कि हम अंतरजाल के भ्रमजाल में न फंसे बल्कि सूचनाओं के संप्रेषण एवं विचारों के सेतु के रूप में उसका प्रयोग करें। ■

मीडिया पर अंकुश सही या गलत

क्या वर्तमान में पत्रकार अपनी भूमिका से भटक गये हैं? समाज के चौथे स्तंभ में पत्रकारिता को स्थापित करने के लिए किन मानकों से गुजरना होगा? क्या मीडिया पर अंकुश लगाने की आवश्यकता है?

पत्रकारों के अपने निहित स्वार्थों को पूरा करने के लिए, अपनी ताकत के बेजा इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। पत्रकारिता अभी भी एक बहुत आदर्शवादी पेशा है। पत्रकार कलाकारों की तरह हैं, और गरिमा उनके लिए सबसे महत्वपूर्ण बात है।

शैलेन्द्र पाण्डेय, हिन्दुस्तान दैनिक

समाज में मीडिया अपना स्थान बना चुका है। संवैधानिक तौर पर लोकतंत्र के तीन स्तंभ या आधार माने जाते हैं पर मीडिया ने चौथे स्तंभ के रूप में अपने को स्थापित कर लिया है। आज बिना मीडिया के स्वस्थ लोकतंत्र की कल्पना नहीं की जा सकती। अगर मीडिया पर अपरोक्ष रूप से अंकुश लगाया गया तो वह अपने लक्ष्य तक कभी नहीं पहुंच सकती।

अभय पाण्डेय, वीर अर्जुन

अंतिम तौर पर न्यूज का मतलब विश्वसनीयता है। अगर वह विश्वसनीय नहीं है, तो वह न्यूज नहीं है। मीडिया को लक्ष्मण रेखा नही लांघनी चाहिए। देश का मीडिया इतना कुशल है कि उसे पता है कि उसकी दिशा क्या होनी चाहिए। उस पर किसी तरह की लगाम या अंकुश ठीक नहीं है, इससे पत्रकारिता का मूल उद्देश्य कहीं गुम हो जाएगा फिर किसी सरकारी विभाग और मीडिया में कोई अंतर नहीं रह जाएगा।

अवनीश सिंह, हिन्दुस्थान समाचार

सामाजिक ताने बाने में पत्रकार की अहम भूमिका है। उसे विभिन्न दबावों में काम करना पड़ता है, मीडिया की निष्ठा पर सवाल भी उठते हैं इसके बावजूद कलम कहीं भटकनी नहीं चाहिए वरना लोकतंत्र के चौथे स्तंभ की साख को बट्टा लगेगा। ऐसे में पत्रकारों को अपनी राह खुद बनानी होगी और मीडिया को वह स्थान देना होगा जिसकी कल्पना की गई है।

सोहन भारद्वाज, आज समाज

मीडिया की भूमिका के बिना आदर्श समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। मगर अभी बहुत कुछ करना बाकी है मीडिया को आम लोगों से जुड़ना होगा और सामाजिक सरोकारों से जुड़े विषयों को प्रमुखता देनी होगी।

अरुण कुमार, लिगेसी इंडिया

संतुलित पत्रकारिता होनी चाहिए। सही को सही व गलत को गलत कहने की हिम्मत पत्रकार में होनी चाहिए। मीडिया को जो अधिकार मिले हुए हैं, उनको जिम्मेदारी से निभाना चाहिए। तभी समाज में मीडिया और पत्रकारों की विश्वसनियता बनेगी।

कार्तिक हरबोला, स्वतंत्र पत्रकार

हर किसी का अपना एक दायरा होता है, जिसे व्यक्ति को नहीं लांघना चाहिए। उसी प्रकार मीडिया का भी अपना एक दायरा है, जिसके भीतर रहते हुए ही उसे कार्य करना चाहिए। हां, लेकिन यह भी पूर्णतया उचित नहीं होगा कि मीडिया संस्थानों पर कोई अंकुश लगाया जाये।

पवन कुमार, अमर उजाला

वर्तमान समय में पत्रकारिता अपने मूल विषयों से भटकती जा रही है। टीआरपी की अंधी दौड़ में उन खबरों को प्राथमिक्ता दिया जा रहा है जिसका पत्रकारिता से कोई लेना–देना नहीं है और रही बात मीडिया पर अंकुश लगाने की तो मीडिया पर अंकुश न लगाते हुए एक ऐसी संस्था बनायी जानी चाहिए, जिसके देख–रेख में मीडिया संस्थान कार्य करें और जो मीडिया, चाहे वह प्रिंट व इलेक्ट्रॉनिक कोई भी हो, उसमें कार्य करने वाले कर्मचारियों की समस्याओं का भी ध्यान रखे।

आशीष प्रताप सिंह, पीटीसी न्यूज

पत्रकारों के लिए एक मानक है राष्ट्रहित को ध्यान में रखते हुए खबरों को ईमानदारी से आमजन तक पहुंचाना। हालांकि मीडिया संस्थानों पर अंकुश लगाना चौथे स्तम्भ में कार्य करने वाले निष्पक्ष पत्रकारों के लिए कष्टदायी होगा। इसलिए चौथे स्तम्भ पर अंकुश न लगाते हुए, कोई ऐसे संस्थान व नियमों का बनाया जाना अतिआवश्यक है, जिससे पत्रकारिता भी अपने पथ से न भटके और पत्रकार भी अपने पेशे से संतुष्ट हो सके।

विकास शर्मा, नवभारत टाइम्स

नहीं, मीडिया अपनी भूमिका से नहीं भटक रहा है और ना ही मीडिया पर लगाम लगाने की आवश्यक्ता है। एक पत्रकार वही दिखाता है जो उसे दिखाना चाहिए। मीडिया देश की अखंडता को ध्यान में रखकर ही खबरें दिखाता है। एकाध फिजूल की खबरें यदि कभी–कभार दिखाई भी जाती हैं, तो वह मजबूरी है क्योकि सरकार मीडिया को कोई पैसा नहीं देती है।

रजनीकांत मिश्रा, राष्ट्रीय सहारा

मीडिया अपने मूल्यों से भटक रहा है जिसके पीछे बाजार व राजनीतिक शक्तियों का हाथ है। पत्रकारिता पाठ्यक्रम में जो मूल्य पढ़ाए जाते हैं उसका अनुसरण करके भी स्थिति सुधारी जा सकती है, किन्तु वह केवल किताबों तक सीमित हैं। दूसरी तरफ यदि बात मीडिया पर अंकुश की करें तो पहले मीडिया को पूरी तरह से आजादी तो मिल जाए।

सुरभि स्नेहा, पीटीआई भाषा

पत्रकार अपनी भूमिका से नहीं भटकते है, अगर कहीं भटकाव है भी तो वो मिशन के प्रोफेशन में बदलने के कारण आवश्यक बदलाव है। चौथा स्तम्भ अपने आप में मानक है, इसके लिए नया मानक गढ़ने की आवश्यकता नहीं। मीडिया पर सरकारी अंकुश के बजाय मैं पब्लिक आ. उटकास्क को बेहतर मानता हूं।

चंदन कुमार, जागरणजोश.कॉम

सरकार ने चलाया तानाशाही दाव मीडिया पर लगाम लगाने की तैयारी

सुनील दूबे

सांसद मीनाक्षी नटराजन मीडिया पर अंकुश लगाना चाहती हैं। मीनाक्षी ने इस बारे में बिल लाने के लिए लोकसभा में नोटिस दिया है। मीनाक्षी नटराजन ने कहा है कि प्रिंट और इलैक्ट्रॉनिक मीडिया पर नियंत्रण के लिए एक कानून होना चाहिए। एक ऐसी अथॉरिटी होनी चाहिए जो शिकायतें मिले बगैर स्वतंत्र संज्ञान लेकर जांच कर सके। नटराजन ने प्राइवेट मेंबर बिल लाने के लिए लोकसभा में नोटिस दिया है।

इस बिल का नाम होगा प्रिंट एंड इलैक्ट्रॉनिक मीडिया स्टैंडर्ड एंड रेगुलेशन बिल–2012। इस बिल में उन्होंने मीडिया के नियंत्रण की कमान एक ऐसी बॉडी को सौंपने का प्रस्ताव दिया है, जिसमें सूचना व प्रसारण मंत्रालय के अधिकारी होंगे और सरकार की ओर से मनोनीत तीन सदस्य होंगे। इस बॉडी को राष्ट्रीय सुरक्षा से जुड़े किसी मामले की कवरेज रुकवा देने का असीमित अधिकार होगा। इस प्राधिकरण को मीडिया के ऊपर 50 लाख रुपए तक का जुर्माना लगाने और 11 महीने तक चैनल को बंद करा देने का अधिकार होगा। यह प्राधिकरण सूचना के अधिकार कानून से अलग होगा और किसी भी दीवानी अदालत में इस प्राधिकरण के फैसले को चुनौती नहीं दी जा सकती। ये वही नटराजन हैं जो कांग्रेस महासचिव राहुल गांधी की करीबी हैं और मध्य प्रदेश के मंदसौर से सांसद होने के साथ एआईसीसी की महासचिव व राहुल की कोर टीम में भी शामिल हैं। तो जाहिर है मम्मी सोनिया को जब कोई कार्य साधना होता है तो मनमोहन सामने होते हैं और अब पुत्र राहुल ने भी उसी ढर्रे पर चलते हुए लगातार सामने आ रहे घोटालों और अपनी पार्टी की करतूत सामने लाने वाले मीडिया पर परदे के पीछे रहते हुए निशाना साधना शुरु कर दिया है। यूपीए–2 को लगातार मिल रही नाकामी, सरकार की खराब होती छवि और लगातार सामने आ रहे घोटालों से परेशान होकर सरकार अब अपने सबसे बड़े दुश्मन बनते जा रहे मीडिया पर अंकुश लगाने की सोच रही है। सच्चाई सब जानते हैं। देश आतंक की आग में वर्षों से जल रहा है। युवाओं को सरकार रोजगार मुहैया करवा पाने में नाकाम है। देश की प्रतिभाएं विदेशों में पलायन कर रही हैं। महंगाई की मार से जनता त्रस्त है। इन सारी समस्याओं को हल करने का न तो सरकार के पास समय है, न ही कोई योजना है और न ही कोई हल, लेकिन मीडिया को कैसे कमजोर करना है सरकार के पास हल सुलभ है!

मीडिया एक बार फिर सरकार के हमलों की चपेट में है और उसके इरादों और नीयत को लेकर आरोप लगाए जा रहे हैं। अन्ना के आंदोलन के दौरान मीडिया द्वारा अपनाई गई भूमिका को लेकर फब्तियां कसी जा रही हैं और उसके 'बेलगाम' कवरेज पर सवाल

उठाए जा रहे हैं। समझदार लोगों को और समझाया जा रहा है कि अगर मीडिया का समर्थन नहीं होता तो अन्ना के आंदोलन को इतना व्यापक समर्थन नहीं मिलता।

सरकार आए दिन मीडिया की आजादी को नियंत्रित करने की बात कहती है और मीडिया पर लगातार हमले भी जारी रखती है। सरकार मीडिया की स्वतंत्र भूमिका को सकारात्मक तरीके से देखने की बजाय उसे नकारात्मक ढंग से देख रही है। सरकार का यह दोहरा चरित्र मीडिया की आजादी पर अंकुश उसके संवैधानिक अधिकार पर सीधा कुठाराघात है। सरकार को सिविल सोसायटी के आंदोलन व उसके मीडिया कवरेज से परहेज है। टीम अन्ना पर किए जा रहे लगातार हमले इसका प्रमाण हैं। विपक्षी पार्टियों को सलाह दी जा रही है कि वे नकारात्मक रवैया छोड़ें यानी सरकार की कमियों और गलतियों को ढूंढना बंद कर दें। मीडिया को अनुशासित करने के लिए अलग–अलग माध्यमों की मदद ली जा रही है। इस भ्रम का कोई इलाज नहीं है कि मीडिया और मीडियाकर्मियों को 'अनुशासित' और 'नियंत्रित' करके सूचना के विस्फोट पर प्रतिबंधों के ढक्कन नहीं लगाए जा सकते।

शायद सरकार को यह नहीं पता कि कभी अंग्रेजों ने भी मीडिया को रोकने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। आईपीसी में भी मीडियाकर्मियों का दमन करने के लिए कई धाराएं डाली गईं, जो आजादी के बाद भी नहीं हटाई गई, लेकिन मीडिया पर निरंकुश ढंग से शासन करने वाले नहीं रहे। एक तरफ सूचना उजागर करने वालों (व्हिसलब्लोअर्स) के खिलाफ हमलों की वारदातें बढ़ रही हैं और दूसरी तरफ 'सूचना के अधिकार' और'सूचना के वाहकों' को नियंत्रित करने की कोशिशें भी जारी हैं। इन विरोधाभासी मुखौटों के साथ अपने लोकतंत्र का दुनिया से अभिषेक करवाने की उम्मीदें नहीं की जा सकती। सरकार भूल रही है कि जन आवाज को बुलंद करने वाली मीडिया कल भी बुलंद थी, आज भी बुलंद है और हमेशा रहेगी। ■

चौथे स्तंभ पर टिकी है देश की नजर : चौटाला

''विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश भारत के चार स्तंभों (कार्यपालिका, न्यायपालिका, विधायिका और खबरपालिका) पर टिका है, लेकिन यह एक विडंबना है कि इस समय देश की तीन प्रमुख व्यवस्थाएं अपने पथ से भ्रष्ट हो चुकी हैं। पूरे देश की निगाहें अब चौथे स्तंभ पर टिकी हैं।'' उक्त बातें हरियाणा के पूर्व मुख्यमंत्री और इंडियन नेशनल लोकदल के सुप्रीमो ओमप्रकाश चौटाला ने हिंदी दैनिक समाचार पत्र वीर अर्जुन के संस्थापक और सम्पादक के. नरेंद्र के जीवन मूल्यों पर आधारित पुस्तक विमोचन अवसर पर कही।

चौटाला ने कहा, 'एक तरफ कार्यपालिका अपने कार्य के साथ न्याय नहीं कर पा रही है तो दूसरी तरफ विधायिका सत्ता का प्रयोग केवल व्यक्तिगत लाभ उठाने में कर रही है। वहीं सत्ता में लगे हुए लोग न्यायपालिका के कार्यों पर अंकुश लगाने में लगे हैं। ऐसे में केवल एक ही क्षेत्र है जो देश में सत्य, ईमानदारी और समाज की सुविधा के लिए प्रयासरत है, वह है पत्रकारिता।

'पत्रकारिता के पुरोधा के. नरेन्द्र' नामक पुस्तक विमोचन में चौटाला ने कहा कि के. नरेन्द्र ने पत्रकारिता को एक नया आयाम दिया है। विषम परिस्थितियों में भी अपनी लेखनी के दम पर उन्होंने देशहित के साथ कभी समझौता नहीं किया। उनका यह प्रयास आज भी पत्रकारों के लिए प्रेरणादायी है।

अपने संस्मरणों के आधार पर इनेलो प्रमुख ने कहा कि के. नरेन्द्र की पत्रकारिता ने देश में परिवर्तन की परिपाटी को रचा है। उन्होंने पत्र के माध्यम से इस बात की मिसाल प्रस्तुत की है कि पत्रकारिता किस प्रकार निर्भीक व निष्पक्ष होनी चाहिए। उनका समाचार पत्र 'प्रताप' जंग–ए–आजादी में जुझने वाले लोगों के लिए प्रेरणा का स्रोत रहा है। देश के स्वराज में समाचार पत्र 'प्रताप' व नरेंद्र जी की भूमिका सराहनीय रही है।

के. नरेंद्र की पत्रकारिता और आज के वर्तमान दौर की तुलना करते हुए पूर्व मुख्यमंत्री ने कहा कि समय चाहे जो भी रहा हो पर मीडिया ने हमेशा अपनी भूमिका के साथ इंसाफ किया है। आज विधायिका निलाम हो गयी है। उन्होंने परमाणु संधि की घटना का जिक्र करते हुए कहा कि जब इस संधि पर बहस चल रही थी तो संसद में कुछ विधायकों

ने रूपयों से भरा बैग सदन के सामने रखकर यह बात कही थी कि उन्हें खरीदने की कोशिश की जा रही है, जो इस बात को दर्शाता है कि देश के राजनीतिक हालात खराब हो गये हैं। वहीं कार्यपालिका इतनी भ्रष्ट हो गयी है कि बिना पैसे दिए आज किसी के मौत का कागज भी परिजनों को नहीं मिल सकता। ऐसें में मीडिया एकमात्र साधन है जो समाज में फैली बुराईयों को उजागर कर उसके बेहतरी के लिए प्रयास कर रही है।

विमोचन अवसर पर भारतीय जनता पार्टी के वरिष्ठ नेता लालकृष्ण आडवाणी ने कहा कि राष्ट्रवाद की अलख जगाने के लिए राष्ट्रभाषा को बढ़ावा देने का काम के. नरेंद्र ने अपनी पत्रकारिता के माध्यम से किया। सार्वजनिक जीवन में ईमानदारी की प्रमाणिकता कैसे बने इसे उन्होंने अपनी लेखनी ही नहीं व्यवहार से भी प्रतिपादित किया। पत्रकारिता के क्षेत्र में के. नरेन्द्र के योगदान को बताते हुए आडवाणी ने कहा कि ऐसे बिरले परिवार ही होंगे जिनकी तीन पीढ़ियां राष्ट्रवाद को आगे बढ़ाने में अपना सम्पूर्ण जीवन लगाया हो। पत्रकारिता के माध्यम से राष्ट्रसेवा का जो बीड़ा इस परिवार ने उठाया है उससे हम सभी को प्रेरणा लेनी चाहिये।

डा.शिवशंकर कटारे को अखिल भारतीय माखनलाल चतुर्वेदी पुरस्कार

भोपाल। मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी और संस्कृति परिषद् ने वर्ष 2010 के पुरस्कार एवं पाण्डुलिपि प्रकाशन सहायता अनुदान की घोषणा की है। प्रसिद्ध साहित्यकार डा. शिवशंकर कटारे को उनके प्रसिद्ध निबंध 'चम्बल तेरी बात निराली' के लिये वर्ष 2010 का अखिल भारतीय माखनलाल चतुर्वेदी पुरस्कार प्रदान किया जाएगा।

मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी और संस्कृति परिषद् ने विभिन्न विधाओं में श्रेष्ठ कृतियों पर अखिल भारतीय और प्रादेशिक स्तर के वर्ष 2010 के पुरस्कार एवं पाण्डुलिपि प्रकाशन सहायता अनुदान की घोषणा कर दी है।

अकादमी ने प्रति वर्ष दिये जाने वाले पुरस्कारों के तहत कुँवर किशोर टंडन को उनकी कहानी (अनावरण) के लिये अखिल भारतीय मुक्तिबोध पुरस्कार और डॉ. मीनाक्षी स्वामी को उनके उपन्यास के लिये अखिल भारतीय वीर सिंह देव पुरस्कार दिये जाने की घोषणा की है।

डॉ.मधुरिमा सिंह को उनकी कविता (स्वयंसिद्धा यशोधरा) के लिये अखिल भारतीय भवानी प्रसाद मिश्र पुरस्कार एवं अरूण होता को

आधुनिक हिंदी कविता (युगीन संदर्भ) आलोचना के लिये अखिल भारतीय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पुरस्कार की घोषणा की गयी है।

वर्ष 2010 के प्रादेशिक बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' पुरस्कार शरद पगारे को 'पाटलिपुत्र की सम्राज्ञी' उपन्यास, प्रादेशिक सुभद्राकुमारी चौहान पुरस्कार सावित्री जगदीश को 'सफर और अन्य कहानियां', प्रादेशिक श्रीकृष्ण सरल पुरस्कार डा रामगरीब 'विकल' को 'बदलते मौसम के इंतजार में'(कविता) प्रादेशिक नंददुलारे वाजपेयी, डॉ क्षमा जोशी को 'हिन्दी साहित्य में ज्योतिष शास्त्र की परंपरा' (आलोचना), प्रादेशिक हरिकृष्ण प्रेमी पुरस्कार रामदुलारी शर्मा को 'तीन रंग लोक के' (नाटक एकांकी), प्रादेशिक राजेन्द्र अनुरागी पुरस्कार, कैलाश मंडलेकर को 'एक अधूरी प्रेम कहानी का दुरूखान्त' (व्यंग्य ललित निबंध, आत्मकथा, डायरी–संस्मरण आदि) प्रादेशिक दुष्यंत कुमार पुरस्कार दुष्यंत दीक्षित को (प्रदेश के लेखक की पहली कृति), प्रादेशिक सिंरी पुरस्कार डॉ परशुराम शुक्ल 'विरही' को 'बुंदेली लोकगीत और लोक संस्कृति' (लोक भाषा विषयक) के लिए घोषित किए गए हैं।

वर्ष 2010 के प्रादेशिक जहूर बख्श पुरस्कार के लिए कोई भी कृति पुरस्कार योग्य नहीं पाई गई है। इसी तरह वर्ष 2010 के सामान्य श्रेणी के रचनाकारों की पाण्डुलिपियों के लिए क्रमशः तुम्हारी मेरी बात (कविता) के लिए भोपाल की हेमा वीरेन्द्र सिंह को, आज–कल के लिए (कविता) विजयपुर के लक्ष्मीनारायण कोष्ठी को, अनुभूतियाँ (कविता) के लिए ग्वालियर निवासी डॉ. उर्मिला सिंह तोमर को, कविता पाण्डुलिपि के लिए भोपाल निवासी डॉ. संगीता गुन्देचा और इंदौर की डॉ. सोना सिंह तथा साधना के स्वर (कविता) के लिए बालाघाट निवासी सोना जैन को प्रकाशन सहायता अनुदान स्वीकृत किया गया है।

इसके अलावा आरक्षित श्रेणी के लिए मिर्च मसाला (कविता) के लिए पन्ना के लक्ष्मीनारायण चिरोल्या को, कहीं तो होगा (कविता) के लिए भौरा के ख्याति आकांक्षा सिंह को, क्रांतिक अवलोकन (कविता) के लिए बालाघाट निवासी कँवल विद्रोही को, क्या मैं जीना चाहता हूँ (कहानी) के लिए ग्वालियर के कृष्णकांत चौहान को, आंचलिक पत्रकारिता और समस्याएँ (निबंध) के लिए इंदौर के डॉ. प्रेम वर्मा को भी प्रकाशन सहायता अनुदान दिया जाएगा।

पत्रकार हरीश चंद्र बर्णवाल की कहानियों का संग्रह रिलीज

नई दिल्ली। वरिष्ठ टीवी पत्रकार हरीश चंद्र बर्णवाल की कहानियों का संग्रह "सच कहता हूं" को देश की की जानी मानी हस्तियों ने लोकार्पण किया। ये लोकार्पण समारोह फिल्म सिटी के मारवाह स्टूडियो में किया गया। कार्यक्रम में बतौर मुख्य अतिथि राष्ट्रीय महिला आयोग की अध्यक्ष सुश्री ममता शर्मा मौजूद रहीं।

कार्यक्रम में वरिष्ठ लेखक और हंस के संपादक राजेंद्र यादव, मशहूर लेखिका मैत्रेयी पुष्पा, आज तक न्यूज चैनल के न्यूज डायरेक्टर कमर वाहिद नकवी, आईबीएन–7 के मैनेजिंग एडिटर आशुतोष, न्यूज 24 के मैनेजिंग एडिटर अजित अंजुम, महुआ के ग्रुप एडिटर राणा यशवंत, आज तक के वरिष्ठ एंकर सईद अंसारी, सीनियर आईपीएस अफसर और दिल्ली के ज्वाइंट कमिश्नर ऑफ पुलिस तेजेंदर लुथरा और बच्चों के मशहूर डॉक्टर रवि मलिक ने भी शिरकत की। कार्यक्रम के मॉडरेटर रहे मारवाह ग्रुप के डायरेक्टर संदीप मारवाह।

राष्ट्रीय महिला आयोग की अध्यक्ष ममता शर्मा ने हरीश चंद्र बर्णवाल की लेखनी की तारीफ करते हुए कहा कि कहानियों में उनका किसी भी मुद्दे को लेकर चित्रण काबिले तारीफ है। ममता ने बताया कि हरीश ने महिलाओं और बच्चों से जुड़े ज्वलंत मुद्दों को उठाया है।

उन्होंने आशा व्यक्त की कि लेखक हरीश आगे भी कहानियों के माध्यम से महिलाओं और बच्चों से जुड़ी दिक्कतों को उठाते रहेंगे। किताब के लोकार्पण के बाद वरिष्ठ लेखक राजेंद्र यादव ने हरीश की जमकर तारीफ की। यादव ने "यही मुंबई है" और "चौथा कंधा" कहानियों का जिक्र करते हुए कहा कि ये कहानियां उपेक्षित बालक की निगाह से लिखी गई हैं।

हरीश की ताकत ये है कि वो कहानियों को विजुअलाइज करते हैं। मशहूर लेखिका मैत्रेयी पुष्पा ने बताया कि हरीश की कहानियों को पढ़कर एक नई सोच मिली। जिंदगी को देखने का नया नजरिया मिला। मैत्रेयी ने हरीश की कहानी "काश मेरे साथ भी बलात्कार होता" के कुछ हिस्से पढ़कर सुनाए।

आज तक के न्यूज डायरेक्टर कमर वाहिद नकवी ने कहा कि हरीश बर्णवाल की कहानियां चौंकाने वाली हैं। वहीं आईबीएन–7 के मैनेजिंग एडिटर आशुतोष ने "काश मेरे साथ बलात्कार होता" और "चौथा कंधा" कहानी के कुछ चौंकाने वाले हिस्से पढ़कर सुनाए।

साथ ही ये भी कहा कि मीडिया से जुड़ी हुई कुछ कहानियां मीडियाकर्मियों की आंखें खोलने के लिए काफी हैं। आशुतोष ने मीडिया पर कटाक्ष करती हुई कहानी "तीन गलतियां" भी लोगों को पढ़कर सुनाई और कहा कि ये कहानियां मन मस्तिष्क को हिला देने वाली रहीं। सीनियर आईपीएस अफसर तेजेंद्र लुथरा और महुआ चैनल के ग्रुप एडिटर यशवंत राणा ने भी किताब की जमकर तारीफ की। यशवंत ने कहा कि जो लोग सोचते हैं कि टीवी के लोगों को कुछ नहीं आता या फिर संवेदनशील नहीं होते, उनके लिए हरीश चंद्र बर्णवाल की किताब एक करारा जवाब है।

लेखक हरीश चंद्र बर्णवाल ने बताया कि जब–जब जीवन की गंभीर दिक्कतों ने उन्हें परेशान किया, उस पर लगातार मेहनत करते, उन परेशानियों को करीब से समझने की कोशिश की और आखिरकार बरसों की मेहनत के बाद ही ये कहानियां लिखी गईं। इसीलिए उन्होंने 20 सालों में सिर्फ 6 कहानियां और चंद लघुकथाएं लिखी हैं।

1. **असाइनमेंट एडिटर** – न्यूजरूम में मौजूद व्यक्ति जो दिन भर की न्यूज पर नजर रखता है और संवाददाताओं को जिम्मेदारी सौंपता है।

2. **आइडेंट** – (अ) किसी भी कार्यक्रम की पहचान बन जाने वाली ध्वनि व चित्र।
(ब) हर चैनल का अपना चैनल आई डी अर्थात चैनल की पहचान वाला ध्वनि व चित्र–संकेत जो दिन में बार–बार प्रसारित होता है।

3. **ईएनजी** – इलेक्ट्रॉनिक न्जूज गैदरिंग यानी वीडियो कैमरे से समाचार संकलन। इसे इलेक्ट्रॉनिक जर्नलिज्म, इलेक्ट्रॉनिक कैमरा कवरेज और पोर्टेबल सिंगल कैमरा सिस्टम भी कहा जाता है।

4. **एजीसी** – ऑटोमेटिक गेन कंट्रोल। यह एक इलेक्ट्रॉनिक सर्किट है जो आ रहे ऑडियो या वीडियो सिग्नल की शक्ति को खुद ही नियंत्रण में ला सकता है ताकि एक निश्चित स्तर को कायम रखा जा सके।

5. **इन–विजन** – एंकर या रिपोर्टर का कैमरे के सामने रहकर समाचार पढ़ना।